मेरी प्रिय कहानियां / उषा प्रियंवदा

मेरी पहली कहानी 'लालचूनर' थी,
उसके वाद की तीन साल की अवधि में
मैंने तमाम कहानियां लिखीं…
मेरी कहानियों के पीछे एक वीज
जरूर होता है—एक विचार, एक इमेज,
एक अनुभव या अनुभूति का।…
चैलेंज मुझे उत्साहित करते हैं, डेड लाइन्स
मुझे प्रेरित करती हैं। मेरी प्रिय कहानियां
वे हैं जोकि एक फ्लैश में जन्मीं
और मैंने उन्हें लिख डाला !…
सृजन-क्रिया मेरे अन्दर,
मन में वरावर चलती रहती है
जव मैं कहती हूं कि मैं आजकल
कुछ नहीं लिख रही हूं तो शायद मैं झूठ
वोलती हूं। हर दिन इस इन्तजार में गुज़रता है
कि न जाने कव, क्या मन को यों छू ले
कि एक नई कहानी की शुरुआत हो जाए…

मेरी प्रिय कहानियाँ

भूमिका

तब तक इंडियाना में गर्मियां आ चुकी थीं। कैम्पस के सामने आकर मैंने तभी डाक से मिला पैकेट फाड़ा—'नई कहानियां' की प्रतियां थीं। लाल पेंसिल से रेखांकित अंशों को खोलकर नज़र डालते ही मुझे एक झटका-सा लगा। 'वापसी' पर एक चर्चा, परिचर्चा।

लाइब्रेरी के सामने अपनी प्रिय बेंच पर बैठकर मैंने वे पृष्ठ पढ़ डाले। यूजीन ओ'नील पर जो लेख क्लास के लिए लिखना था, उसे भूलकर मैं बहुत देर तक उस बेंच पर बैठी रही—कुछ परिचित, कुछ अपरिचित नाम मन में डूबते-उतराते रहे। गुरु, प्रकाशचंद्र गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, 'निर्गुण', जिनकी कहानियां मैंने स्कूली आयु में उसी चाव से पढ़ी थीं, जिस चाव से मैंने शरत्चंद्र के लेखन को चाट डाला था। नया नाम था नामवरसिंह का—उस समय जिज्ञासा हुई, यह सज्जन हैं कौन ?

और उन्हीं, मिले-जुले भावों के बीच, पहले-पहल एक बहुत अकेलेपन की अनुभूति हो गई, मैं दोपहर तक इधर-उधर भटकती रही, मन में गुनती हुई कि अचानक यह जो सब डाक-विभाग की कृपा से मेरे ऊपर आ पड़ा है, उसका क्या करूं ? ऊपर से पानी का सा दबाव छंट गया तो तलछट में सोने के कुछ चमकते कणों के बीच यह भावना टॅंग रह गई, कि इतनी दूर आकर अपने संदर्भ से कटकर भी, मैं लेखन और हिंदी और भारत से जुड़ी हुई हूं। कि हिन्दी ही मेरी भाषा है थी यदि कुछ 'वर्थव्हाइल' मुझसे लिखा जाएगा, तो हिन्दी में ही।

मुड़कर देखने पर यह क्षण बहुत ही महत्त्वपूर्ण लगता है। उस साल, पूरे वर्ष मैंने अंग्रेजी में लिखा था, कहानियां, कविताएं, एक उपन्यास के चार अध्याय। प्रोफेसर, सहपाठी और मित्रों ने प्रशंसा की थी और आगे लिखने को उकसाया था। अमेरिका में जिन भारतीयों से भेंट हुई थी, वे सब अंग्रेजी में लिख रहे थे, ए० के० रामानुजन्, पी० लाल, बालचन्द्र राजन। मुझे लगता था कि अंग्रेजी में

गाड़ी चल सकती है, पर एक अनाम भावना मुझे बार-बार रोकती थी। उस दिन के बाद मेरे मन में दुविधा न रही। वह गर्मियां मैंने 'राइटर्स वर्कशाप' में बिताईं लिखने के साथ-साथ भारती से गप्पें लगाते हुए—वांस बूर्जेली के साथ कोल्ड कॉफी पीते हुए अपनी पसंद के लेखकों पर बातें करते हुए। मेरे निश्चय को उन्होंने स्वीकार कर लिया और हिन्दी में ही लिखने को उत्साहित किया। वर्कशाप छोड़ने के बाद मैंने भी यह बात स्वीकार कर ली कि लिखना मेरे जीवन का एक बहुत ही अभिन्न भाग है, मेरे लिए बहुत ही आवश्यक है…इससे पहले मैंने लिखा था, पर अपने को लेखिका नहीं माना था। लिखना अकेले क्षणों का दिवास्वप्न, या फैंटेसी संसार की उपज था, बहुत कुछ मायनों में अब भी है, परन्तु अब वह एक 'कांशस एफर्ट' है। और शायद इसीलिए दुःखदायी भी।

कहानियां, मुझे जब से याद है, मैंने गढ़ीं, कहीं और बाद में लिखीं। मेरी पहली कहानी जो 'सरिता' में छपी वह 'लाल चूनर' थी। उसके बाद की तीन साल की अवधि में मैंने तमाम कहानियां लिखीं—तभी अपने लिखे गए के प्रति तीव्र असंतोष उभरा, ऐसा जान पड़ा कि ऐसी कहानी लिखने में कोई चैलेंज नहीं है।

इलाहाबाद छोड़कर मैं दिल्ली आई और लेडी श्रीराम कालेज में उत्साह से अंग्रेजी पढ़ाना शुरू किया। 'छुट्टी का दिन' उन्हीं दिनों लिखी गई। बहुत दिनों बाद उसे अब पढ़ने पर मेरे मन में छोटे शहर के अकेलेपन और एक निरुद्देश्य भटकन का वही स्वाद ताजा हो आया जिसके दौरान मैंने यह कहानी लिखी थी। 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' भी उन्हीं दिनों लिखी गई, और भी कई कहानियां, 'पूर्ति', 'मोहबंध', जो मध्यम वर्ग की, पढ़ी-लिखी स्त्रियों के इंटरपर्सनल संबंधों की कहानियां हैं।

'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' संग्रह की कहानियों के बाद एक बार फिर भावभूमि बदली, अनुभवों और अनुभूतियों का धरातल बदला—'कोई नहीं', 'झूठा दर्पण', 'एक कोई दूसरा' और 'पचपन खम्भे, लाल दीवारें' उन दिनों की उपज हैं। उन वर्षों की अंतिम कहानी 'वापसी' है। उसी वर्ष में फुलब्राइट पर अमरीकी साहित्य का अध्ययन करने अमेरिका आई, और इंडियाना विश्वविद्यालय में पोस्ट डॉक्टोरल काम शुरू किया। उस पहले वर्ष अमेरिका में मैंने बहुत कुछ नया जिया, नया परिवेश, नई पुस्तकें, नये विचार। रामानुजन ने अमेरिकी कवियों और

लेखकों से परिचय कराया—उसकी फिनिश मंगेतर ने स्कैंडिनेविया का द्वार खोला। एक ही सप्ताह में सत्यजित राय और इंगमार बेरीमान की फिल्में देखना मुझे सहज लगने लगा।

उस वर्ष की पहली कहानी 'बनवास' है, जोकि एक संकुचित दायरे में रहने वाली भारतीय स्त्री के सांस्कृतिक संघर्ष की कहानी है।

मेरी कहानियों के पीछे एक बीज जरूर होता है, एक विचार, एक इमेज, एक अनुभव या अनुभूति का। मैं यह दावा नहीं करती कि मेरे सारे पात्र एकदम कल्पित हैं, साथ ही कोई भी, यथार्थ जीवन से पूरी तरह, वैसा ही पृष्ठों में नहीं आ पाया है, क्योंकि किसी व्यक्ति-विशेष को लेकर उसे पहचाने जाने वाले रूप में रखना मुझे कुछ ऊबभरा और ओछा-सा लगता है। यह जरूर है कि कभी-कभी कोई दृश्य, एक चेहरा या किसीका कहा गया वाक्य मेरी सृजनात्मक प्रतिक्रिया को ऐसे छू देता है कि एक कहानी अनायास अपने-आप गुंथ जाती है। प्रायः चरित्रों का बीज जीवन से आता है, परन्तु कहानी शुरू करते हुए मेरे मन में जो इमेज होती है, अंत करते तक एकदम बदल जाती है। क्योंकि बहुत बार मैं स्वयं यह नहीं जानती कि लिखते समय स्मृति या अनुभव का कौन-सा दरवाजा खोल कौन बाहर आ खड़ा होगा। हां, शारीरिक विशेषताएं, बातचीत का ढंग, और पृष्ठभूमि मैं निस्संकोच यथार्थ जीवन से लेती हूं। वैसे भी मेरी आंख कैमरे की तरह स्मृति पर दृश्य उतारती रहती है, और कभी-कभी भूली हुई बात कहानी में यों आ जाती है कि मुझे अपने अंदर के सहज कैटेलौगिंग सिस्टम पर आश्चर्य होता है। शायद इस प्रकार की स्मृति के कारण ही परिचित मुझे उनपर लिखने का आरोप लगाते हैं।

श० ने मुझे लिखा—तुम तो 'पचपन खंभे' लिखकर चलती बनी, यहां सब मेरे जीवन में नील को ढूंढ़ रहे हैं, तब मुझे हंसी आ गई। पर-पर्दों और गाड़ियों का रंग, नौकरानी का नाम मैंने श० से जरूर लिया था, परन्तु सुषमा और नील काल्पनिक थे। जिस कहानी में श०, कल्पित शारीरिक रूपरेखा में, अपने असली आवरण में, मेरे अनजाने में ही आ गई, उसमें उसने अपने को पहचाना नहीं है।

इसी प्रकार 'वापसी' लिखते हुए मेरे मन में केवल दो दृश्य घुमड़ते रहते थे। बचपन में स्टेशन के पास की बिताई गई गर्मियों की छुट्टियों की याद, और वह प्रौढ़, थके और बुझे-से व्यक्ति, जिन्होंने कई शामें मेरी मां के पास अपने बच्चों की

'कैलसनेस' और लापरवाही का रोना रोते हुए बिताई थीं। वह कहानी बहुत जल्दी और हड़बड़ी में लिखी गई थी। मैंने 'आकाशवाणी', प्रयाग और 'नई कहानियां' दोनों को एक-एक कहानी का वचन दे दिया था, पर जैसी मेरी आदत है, टालमटोल करते हुए दिन निकल गए और जब श्रीमती शांति मेहरोत्रा के एक-एक दिन में तीन-तीन तकाज़े आने लगे, तब 'पैनिक' में आकर मैंने डेढ़ दिन में वह कहानी लिख डाली। लिखने के बाद केवल थोड़ा-सा ही संशोधन किया गया—छपने पर, 'गजाधर बाबू' के सबसे बड़े पुत्र ने मुझसे पूछा : "यह स्टेशन की सेटिंग और यह 'स्टोरी आइडिया' तुम्हें सूझा कैसे ?" तो भी मैं चुप रहकर मुस्कराने के अतिरिक्त कुछ और उत्तर न दे सकी। जब वह पत्रिका पढ़ रहा था तब मुझे लग रहा था कि किसी भी क्षण वह प्रति फेंक देगा और रोष से कमरा छोड़कर चला जाएगा। शायद उस कहानी ने उसे कहीं छुआ, पर वह अपने को या अपने पिता को पहचान नहीं सका, शायद इसलिए भी कि उन दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों ने कहानी के आइडिया को ट्रिगर भर किया था, कहानी उसकी या उसके पिता की न थी।

चैलेन्ज मुझे उत्साहित करते हैं, डेडलाइन्स मुझे प्रेरित करती हैं, 'मेरी प्रिय कहानियां' वे हैं जोकि एक फ्लैश में जन्मीं, और मैंने एक या दो दिन में उन्हें लिख डाला। शायद वह कहानियां बरसों कहीं दबी पड़ी रहती हैं और सम्पादकों के चाबुक फटकारने पर, जब मैं हड़बड़ी में यह सोचने लगती हूं कि क्या लिखूं, तब मैं पाती हूं कि मुझे दूर तक नहीं खोजना पड़ता। बहुत कुछ 'वापसी' की ही परिस्थितियों में लिखी गई कहानी 'सुरंग' है, और वातावरण बचपन की उन्हीं स्मृतियों से प्रेरित; स्टेशन, रेलगाड़ियों, सिगनलों के पार क्षितिज, इन सबने एक कैनवस दिया, जिसपर 'मां', 'अरुणा' और 'बेबी' तीन कटे हुए प्राणी अपने आप, अपनी कहानी लिए हुए उतर आए।

'ट्रिप' मैंने डेनमार्क में लिखी थी, 'कितना बड़ा झूठ' डेनमार्क से लौटते ही। ये दोनों कहानियां एक बड़ी ही सचाई के मूड में लिखी गईं, इस मायने में कि आत्मकथात्मक न होते हुए भी, मैं ऐसे पात्रों से परिचित थी, वह सब भी एक-दूसरे से परिचित थे। 'यदि ऐसा होता, तो ऐसे होता' लेकर मैंने घटनाएं और चरित्र गढ़ डाले थे। एक परिचिता ने इतना-भरकहा था, "तुम्हें पता,'—'ने '—' से शादी कर ली है।" और उसी क्षण, वह कहानी मेरे मन में सम्पूर्ण रूप से,

आदि से अंत तक उतर आई और उसे मैंने लिख भी डाला।

'कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा' लेकर कहानी गूंथना खतरे से खाली नहीं है। कृष्ण रेड्डी के प्रिंटों की प्रदर्शनी में मैंने अपनी पड़ोसिन का परिचय उनसे कराते हुए कहा, "यह मेरी मित्र है, स्वयं चित्रकार है, इनके पति सर्जन हैं।" तब कृष्ण के पास खड़ी मेरी एक अमरीकी छात्रा नटखट भाव से बोल पड़ी, "रेडियो ने कहा, बीप, बीप।" और उसके साथ मेरे सभी छात्र ठहाका मारकर हंस पड़े। तब मैं एक अजीब-सी स्थिति में पड़ गई। 'सम्बन्ध' के सर्जन की प्रेरणा मुझे पड़ोसी डाक्टर से अवश्य मिली थी, परन्तु उसे पड़ोसिन को कैसे समझाऊं, क्योंकि यह भी आशंका थी कि वह कहीं कुछ और न समझ पूरी कहानी को ही सच मान लें। परन्तु यह पहला अवसर था जब मैं रंगे हाथों पकड़ी गई।

एक या दो सिटिंग में लिखी गई कहानियों के विपरीत वे भी कहानियां हैं जिन्हें पकने में लम्बा समय लग जाता है। मानसिक रूप से 'सम्बन्ध' और 'प्रतिध्वनियां' एक ही से मूड में लिखी गई हैं। एकदम अकेले और बाहरीपन की अनुभूति में। पर 'सम्बन्ध' का आइडिया आने और पूरा होने में दो साल का अंतर है। इसी तरह 'मछलियां' और 'टूटे हुए' में मुझे बहुत समय लग गया था।

पहले-पहल मैं मैडिसन जाड़ों में आई थी। बर्फ से जमी हुई, लेक मौन पर खड़े होकर एक बन्धु ने दूसरी पार एक बड़ी-सी इमारत को दिखाते हुए बताया था कि वह विस्कांसिन प्रदेश का पागलखाना और अस्पताल है। उस रात, उसके फ्लैट में अतिथियों से घिरे होने पर भी, मैं बाहर पेड़ों में सिर धुनती हुई हवा का अकेला स्वर सुनती रही थी। जाड़ों में जब वृक्ष एकदम रूखे और नंगे हो जाते हैं, झील की ओर से ठंडी तेज हवा वैसे ही हाहाकार करती हुई उठती है, और पहले जाड़ों में मैंने 'टूटे हुए' लिखने का कई बार प्रयत्न किया, पर उन असम्बद्ध इमेजेज को रूप तब मिला जबकि मैं एक बार एक परिचित से मिलने गई। एक बड़े-से दोमंजिले पुराने मकान में वह रहा करते थे, गलियारा धुएं से काला था, और उसमें मक्खन, भुनी हुई प्याज और जीरे की महक स्थायी रूप से बसी हुई थी। 'मास्टर' का विचार मुझे वहीं से आया—और तब कहानी आगे बढ़ी।

'स्वीकृति', 'चांदनी में बर्फ पर,' 'सम्बन्ध' कहानियों की पृष्ठभूमि विस्कांसिन से प्रभावित है, पात्र यहां न होकर कहीं भी हो सकते हैं, कैनसास में या मोंट

या में, पर कटेपन की भावना हर जगह, वैसी ही है। मेरे लिए, चाहे पात्र
देश में रहते हों, या भारत के किसी छोटे शहर में; चाहे वह समाज द्वारा थोपा
या सुषमा का अकेलापन हो या अपने-आप ग्रहण किया हुआ राधिका का
जनबीपन, प्रामाणिक हैं और लेखन के उपयुक्त। मेरे विचार में, विदेशी वाता-
रण ने इस अकेलेपन और अजनबीपन को मुखर किया है, वैसे मैं स्वयं एव.
बहुत 'प्राइवेट परसन' हूं, और गहरे मित्र बनाने में मुझे समय लगता है, शायद
मेरे पात्रों के अकेलेपन में, मेरी इस दृष्टि और प्रवृत्ति का प्रभाव आ जाता है।

एक बार लिखकर मैं ऐसे चुक जाती हूं कि फिर उसे छूने का मन नहीं करता।
सृजनात्मक ज्वार में लिखी गई कहानियों को मैंने कम ही रिटच किया है। बहुत-
सी कहानियों की मेरे पास प्रतिलिपि तक नहीं है। कहानी लिखे जाने से छपने
तक के व्यवधान में मैं उससे इतनी दूर चली जाती हूं कि कभी-कभी प्रकाशित
कहानी को पढ़कर मुझे आश्चर्य होता है कि वह मुझसे ही लिखी गई है।

सृजनक्रिया मेरे अन्दर, मन में, बराबर चलती रहती है, उसकी अभिव्यक्ति
चाहे क्लास में दिए गए लेक्चर में हो, या लम्बे पत्रों या नोटबुक में। जब मैं कहती
हूं कि मैं आजकल कुछ नहीं लिख रही हूं तो शायद मैं झूठ बोलती हूं। हर दिन
इस इन्तज़ार में गुज़रता है कि न जाने कब, क्या मन को यों छू ले कि एक नई
कहानी या उपन्यास की शुरुआत हो जाए।

—उषा प्रियम्व

७ जनवरी, १९७४
मैडिसन, विस्कांसिन

क्रम

कितना बड़ा झूठ

बहुत सवेरे, बहुत जल्दी उठकर वह पीछे का दरवाजा खोलकर दहलीज पर बैठ गई। बिस्तर की गरमाई से निकलकर खुले में बैठने से एकबारगी ही पूरी देह में रोएं उठ आए। बाद में वह ताजी, सोंधी हवा थोड़ी-सी अच्छी लगी।

पीछे घास का लम्बा-चौड़ा मैदान था, जहां रविवार को लड़के फुटबाल खेलते थे, आसपास के फ्लैटों के सम्मिलित बगीचे थे, और पड़ोसिन के प्लाट में सूखे पौधों के बीच एक बहुत ऊंचे पौधे पर बड़ा-सा सूरजमुखी का फूल दीख रहा था। फूल का मुंह सचमुच सूरज की ओर था।

किरन ने साड़ी के आंचल से पीठ और बांहें ढक लीं, एकाएक उसने चाहा कि वह चीखकर रो पड़े, वैसे ही जैसे पति की अर्थी उठते हुए देख सद्यःविधवा रोती है, पर इस समय उसने दांत कसकर भींच लिए, और पीछे वृक्षों, फूलों और घास को देखती रही। दृश्य रह-रहकर धुंधला जाता।

कल ही किरन छुट्टी के बाद लौटी थी, ढाई महीने की छुट्टी के बाद तरोताजा, उत्साहित। पिछले पन्द्रह दिनों से रोज कई बार घर लौटने की सोचकर खुश हो लेती थी। और घर की याद करते समय कुर्सी, मेज या दीवारों का ध्यान नहीं आता। उसने सब प्लान कर लिया था।

तीसरे पहर पहुंचेगी, लड़कियों को समर कैम्प से लेने पति चले गए होंगे, इसलिए घर खाली होगा, आते ही वह ऑफिस को फोन करेगी।

ऐसा ही किया, पति का नोट पढ़ा, 'नीता और मीना को लेने जा रहा हूं।'

कागज की उस पुर्जी को मसलकर एक कोने में फेंकते हुए वह फोन की ओर बढ़ गई, सफेद रंग के फोन पर जम आई धूल की परत पर ध्यान गया, पर नम्बर मिलाते हुए उत्कंठित हो आई थी।

तीसरी ही रिंग पर फोन उधर उठा लिया गया और एक घबरायी-सी, लड़की की आवाज ने कहा, "मिसेज बासवैस बोल रही हूं···"

अचकचाकर किरन ने पूछा, "कौन ?"

"ओह, तुम हो किरन !" फोन पर खिलखिलाकर हंसते हुए उसने कहा, "मैं हूं वारिया, मैक्स और मैंने विवाह कर लिया है। तुम कब आई ?"

किरन ने कहा, "वारिया, मैं फिर बात करूंगी, बच्चे अभी खाना मांग रहे हैं।" फिर कुछ सोचकर जोड़ा, "मेरी ओर से मैक्स को बधाई दे देना।"

तुरन्त उसे पूरी तरह आभास नहीं हुआ कि सचमुच कैसा लग रहा है। पहली अनुभूति केवल गहरी निराशा की थी, मैक्स के स्पर्श से वंचित रह जाने की, तीन-चार दिन से देह जैसे तप रही थी, यात्रा-भर बैठी-बैठी वह उन आनेवाले कुछ घंटों के साथ के बारे में ही सोचती रही और होंठों के कोने बार-बार मुसकराहट से कांप उठते और जैसे-जैसे घर पास आता जाता, वह और भी उत्कंठित होती जाती।

किरन की देह अब कांपने लगी थी, वहां सोफे पर लेटते हुए कई बातें मन में एकसाथ उठीं और दब गईं। सन्तुष्ट होने पर मैक्स की आंखों में कैसा उजलापन आ जाता है, अब वह मैक्स को कभी छुएगी तक नहीं, और वारिया उससे, किरन से, दसेक साल छोटी तो होगी ही—किरन की अब आंखें भर आईं, हिन्दुस्तानी औरत रोने के अलावा कर ही क्या सकती है ! वह न तो जाकर वारिया के बाल ही जड़ से उखाड़ सकती है, न मैक्स की लात, जूतों या गाली-गलौज से खबर ले सकती है।

मैक्स ने छुट्टी-भर केवल दो पत्र लिखे थे, कोई नई बात नहीं लिखी थी, इधर-उधर का हाल, कौन कहां है, किरन अच्छी होगी, और फिर चुप्पी। किरन को तभी समझ जाना चाहिए था। पर कैसे समझती ! विश्वास जो था।

बाहर का दरवाजा खुला और नीता और लीना अन्दर घुस आईं, लीना छोटी होने के कारण अभी भी मां से लिपटती है, नीता अलग खड़ी मुसकराती रही, मां के अपनी ओर आने की प्रतीक्षा में—किरन ने नीता के सिर पर हाथ रखकर पूछा, "कैसा रहा कैम्प ? तैरना सीखा ? घर पर पापा को तंग तो नहीं किया ? लीना ने लड़ाई तो नहीं की ?"

नीता मुसकराती रही। लीना ने पूछा, "हमारे लिए क्या लाई मम्मी ?"

"तुम्हारे कमरे में पलंग पर रखा है। और तुम्हारे लिए भी है नीना!"

बच्चों के अपने-अपने कमरों में दौड़ जाने पर किरन कुछ क्षणों को पति के साथ अकेली हुई। दोनों अटैची कोने में रखते हुए विश्वेश्वरने उसे हल्के-से आलिंगन में ले लिया और किरन ने बिना कुछ कहे विश्व के कंधे पर माथा टिका दिया। एक छोटे-से आंसू ने बाहर आना चाहा, पर किरन ने आने नहीं दिया। अलग होते हुए उसने कहा, "आपके लिए भी एक प्रेज़ेंट है।"

विश्व हंसा, किरन हमेशा उसके लिए ड्यूटी फ्री कौनियाक की एक बोतल लाती है। विश्व की जरूरतें बहुत थोड़ी हैं।

किरन का सूखा हुआ मुंह देखकर कहा, "थक गई होगी। आज शाम खाना बनाने की जरूरत नहीं है। बाहर खा लेंगे।"

किरन बैठ गई, खिड़कियों के पर्दे इस बार जरूर बदलने हैं, कार्पेट कितना मैला हो गया है, और कोलियस गमलों में कितना मुरझा रहे हैं। लगता है कि सफाई करने आनेवाली औरत पानी देना भूल गई है।

किरन उठी और अपने कमरे में चली गई, पलंग पर लेट गई और बांह उसने आंखों पर रख ली। मुरझा जाने दो कोलियस को, नहीं, किरन क्यों रोए, यह तो उसीकी च्वायस थी, विश्व, मधलीना और देवलीना...

"मम्मी, हम आइसक्रीम ले लें?"

"पापा हमें खाने के लिए बाहर ले जा रहे हैं। अभी आइसक्रीम लेने से भूख नहीं रहेगी।" किरन ने कहा।

"थोड़ी-सी, बस दो चम्मच।"

"अच्छा, ले लो।"

विश्व ने ड्रार खंगोलते हुए कहा, "लान्ड्री से कमीजें लाना भूल गया। अब कोई साफ कमीज नहीं है। शावर लेना चाहता था।"

"आप जाकर नहाइए। मैं कमीज निकाले देती हूं।" किरन ने उठते हुए कहा। उठकर अपनी अलमारी खोली और एक धुली कमीज निकालकर विश्व को पकड़ा दी। वक्त-बेवक्त के लिए हमेशा कुछ कपड़े अलमारी में रखती है।

आकर फिर लेट गई।

"सिरदर्द है क्या? तुम कपड़े नहीं बदलोगी?" विश्व ने पूछा।

"हांगकांग काफी भारी है। सुस्ती नहीं।" किरन ने कहा और दरवाज़े की

ओर पीठ कर ली।

कुछ देर बाद नीता हाथ में पानी का गिलास और अनासिन की शीशी लेकर आई, "मम्मी, पापा ने कहा है कि तुम्हें सिरदर्द है, और मैं तुम्हें गोलियां लाकर दूं।"

किरन ने दो गोलियां निगलकर कहा, "थैंक यू नीता!" पर नीता गई नहीं।

"तुम कौन-सी साड़ी पहनोगी मम्मी?"

"क्यों, जो पहने हूं, वह अच्छी नहीं है?"

"अच्छी तो है," नीता ने बड़ी गम्भीरता से निरीक्षण करते हुए कहा, "मगर दूसरी पहनो तो ताजगी महसूस करोगी।"

किरन ने उठकर कहा, "अच्छा, मैं दूसरी पहने ले रही हूं। जरा जाकर देखो, लीना कहीं बहुत ज्यादा आइसक्रीम न खा ले।"

किरन ने सफेद लेस की साड़ी पहन ली। जाकर ड्रेसिंग टेबिल के आगे बैठ गई। ठीक है, वह ढल गई है। हथेली पर लोशन उंड़ेलते हुए उसने सोचा, फिर थोड़ा-सा आगे झुककर उंगलियों से चेहरे पर लगाने लगी, माथे पर बालों की सीमा तक, कानों पर, गर्दन पर नीचे तक जहां ब्लाउज का गला आरम्भ होता है। फिर फाउण्डेशन, फिर बेहद हल्की रूज, पलकों पर आई-लाईनर से लकीरें डालीं, भौंहों को संवारा। कानों की लवों पर ईव सेंट लारें का सेंट, बालों का जूड़ा, फिर हेयर स्प्रे, कानों में बुन्दे, दायें हाथ में सोने की चूड़ियों से मिलाकर कांच की सफेद चूड़ियां, चप्पलें…

विश्व कपड़े पहनता हुआ उसे कमरे में इधर-से-उधर जाते हुए, तैयार होते हुए देखता रहा। उसकी आंखों में हलका-सा जो गर्व उतर आया था, वह किरन से न छिपा रहा।

मैं क्या सदा तुम्हारे जीवन की परिधि से बाहर रहूंगा?

पतझर का एक हल्का उष्ण, चमकता, रंगभरा मध्याह्न। बहुत दिनों बाद मिले थे, कई घंटों के साथ के बाद तुष्ट होकर पास-पास लेटे थे…

किरन ने कहा, "परिधि पर तो नहीं हो। विश्व से तो बांध दी गई थी।"

फिर कुछ देर चुप हो अपने में डूब गई। हफ्ते के बाद हफ्तों मंयक को दूर से देखना और उसका आकर्षण महसूस करना। महीनों पर महीने, साल के बाद साल, और एक दिन वह शाप था हो गया।

"अभी तैयार हुई जा रही हूं।" विश्व की एकटक अपनी ओर ताकते हुए किरन ने कहा।

"कोई जल्दी नहीं है।" विश्व ने कहा।

किरन कमरे के बीचोबीच असमंजस में खड़ी खड़ी रही। विश्व के बाहर चले जाने पर उसने हड़बड़ाते हुए फोन का नम्बर मिलाया, पर उधर से जब चारिमा ने कहा, मिसेज बासवेल, तो किरन ने बिना कुछ कहे रिसीवर रख दिया और कमरे से बाहर निकल आई।

मीना और सीना बाहर तैयार खड़ी थीं।

"नई साड़ी है क्या मम्मी ?" मीना ने पूछा।

"याद नहीं है, पिछली बार पापा न्यूयार्क से लाए थे ?" मीना ने बड़प्पन से कहा।

"बड़े होने पर मेरे लिए छोटी-सी साड़ी बना दोगी मम्मी ?" सीना ने पूछा।

"मम्मी की साड़ियां कभी नहीं फटतीं।" मीना ने कहा। दरवाजा बन्द करके वे लोग मोटर में आकर बैठ गए। लौटने पर कुछ दिन हमेशा अजीब-अजीब-सा लगता है। उजाड़, सूनसान, बेरौनक।

" 'आगरा' में चलें ?" विश्व ने पूछा।

पीछे की सीट पर मीना और सीना खुश हो आईं, " 'आगरा' में मिठाई अच्छी मिलती है, सन्देश, रसगुल्ले।"

"हां।" किरन ने कहा।

'आगरा' के मालिक परिचित हैं, हंसते हुए बोले, "कहिए साहबजी, लौट आईं आप ? अच्छी रही ट्रिप ? कहिए, क्या हाजिर की जाए ?"

फिर पुकारकर कहा, "सीताराम, मेन्यू लाना।"

इस बीच में 'आगरा' की दीवारों पर नया, सुर्ख रंग का बावजूद था, उस से कुछ सस्ते फानूस लटके हुए थे, मकड़ी के जाल लिए।

पार्टिशन ।

"काफी चेन्ज कर दिया आपने ।" किरन ने कहा ।

"मेहरबानी है भाभीजी, इस बार छोटे भाई और उसकी वाइफ को भी बुला लिया है। भाई एकाउण्ट रखता है।" फिर पुकारकर कहा, "रवि इधर आना ; प्रोफेसर साहब से मिलो ।"

रवि कैश-काण्उटर छोड़कर आया, परिचय हुआ । कुछ देर इधर-उधर की बातें हुई और फिर लौट गया ।

विश्व सबकी पसन्द जानता है, बच्चे कबाब खाएंगे, उसे लैम्बकरी पसन्द है। किरन हमेशा वही खाती है, खोया-मटर, दही-बड़े, आलू के परांठे । थोड़ा-बहुत हेर-फेर चाहे जो हो जाए, जैसे कभी चने मंगा लिए तो कभी परांठे की जगह नान ले ली। शिथिल उंगलियों में मेन्यू पकड़े किरन ने छपे हुए हरफों पर नज़र दौड़ाई।

"वही, " उसने कहा ।

मेज़पोश पर कुछ धब्बे हैं, टेपरिकार्डर पर सहगल का एक बहुत पुराना गीत चालू है। पास की मेज़ पर एक भारतीय परिवार बैठा हुआ है, पहले कभी नहीं देखा। स्त्री नीली औरंगाबादी साड़ी पहने हुए है और शायद कुछ अटपटा-सा महसूस कर रही है। पर किरन के केश-विन्यास और कपड़ों को एकटक घूरती रही। विश्व बड़ा सन्तुष्ट दीख रहा है। 'आगरा' में भोजन करने के बाद अक्सर ऐसा भाव मुंह पर आ जाता है ।

"बहुत खा लिया।"उसने कहा।

नीता और लीना बहुत एकाग्र होकर मीठी डिश खा रही हैं, उनकी कटोरियों की सेवई बड़ी तेजी से कम होती जा रही हैं। चम्मच से कटोरी एकदम साफ करते हुए लीना ने कहा, "आह।"

"कैसी पेटू है !" नीता ने किरन से कहा ।

"क्यों बेटी, कुछ और खाओगी ?" विश्व ने लीना से पूछा ।

लीना ने पहले मां को देखा, फिर बहिन को, फिर सिर हिलाकर कहा—"हां, आइसक्रीम ।"

नीता खिलखिलाकर हंस पड़ी ।

लीना झेंप गई। "नहीं और कुछ नहीं," उसने कहा। एकाएक उसकी आंखें डबडबा आई।

किरन ने अपनी बाईं बांह से उसे घेर लिया और विश्व से कहा, "आप मंगा-इए, हम सब खाएंगे। मीता भी।"

कुल्फी के लिए कुछ इंतजार करना पड़ा। नया टेप चल रहा था, लोग भारी तादाद में आने लगे, और बाहर सड़क पर सैकड़ों रंगीन बत्तियां झिलमिला उठीं।

किरन दायें हाथ की उंगली से मेजपोश पर अदृश्य लकीरें खींचती रही, मारिया की उम्र क्या होगी, ज्यादा से ज्यादा तेईस। फिर मारिया आकर खड़ी हो गई, नाटे कद की दुबली-पतली, थोड़ी-सी आर्टिफिशल लगनेवाली लड़की। लम्बे धुले हुए बाल, आधे आगे, आधे पीठ पर, बड़ी-बड़ी आंखें, दो वर्षों से मैक्स की असिस्टेंट थी।

"लो सीना, आ गई कुल्फी। संभलकर खाना।" किरन ने कहा।

सीना मुसकराने लगी, कितनी चमकदार, कितनी सुन्दर आंखें हैं लड़की की!

"कुल्फी अच्छी है।" विश्व ने कहा।

किरन ने एक चम्मच से थोड़ी-सी चखी, हां—और आधी से अधिक सीना की प्लेट में डाल दी।

अब सन्नाटा था। सीना और मीता कपड़े बदलकर, नहाकर, टेलिविज़न पर अपनी पसंद का शो देख चुकने के बाद, अपने-अपने कमरों में चली गई थीं। उनके जाने के बाद विश्व ने टेलीविज़न बंद कर दिया और कोन्याक की बोतल खोलने लगा।

किरन रसोई में बचे-खुचे बर्तन धोने लगी। बाद में हाथ पोंछकर, हैण्डलोशन मलती हुई आई, और विश्व को बोतल खोलते हुए देखने लगी।

सावधानी से दो गिलासों में डालकर एक गिलास उसे पकड़ाते हुए विश्व ने कहा, "वेलकम थैंक रानी!"

"थैंक यू डार्लिंग!" किरन ने उत्तर दिया।

उस सन्नाटे में, पास-पास बैठे वे छोटे-छोटे घूंट लेते रहे, चुपचाप, बहुत संतुष्ट, एक-दूसरे में रमे हुए आदर्श पति-पत्नी की तरह।

फिर किरन ने कहा, "सुना ही होगा, मैक्स ने मारिया से शादी कर ली है।"

"हां," विश्व ने कहा, "विभाग के लोगों ने मिलकर प्रेज़ेंट दिया है। हनीमून के लिए मेक्सिको गए थे, शायद अभी भी वहीं हों।"

वह ऐशट्रे में पाइप उलटकर राख झाड़ने लगा। किरन ने कहा, "तुम

पार्टिशन ।

"काफी चेन्ज कर दिया आपने ।" किरन ने कहा ।

"मेहरबानी है भाभीजी, इस बार छोटे भाई और उसकी वाइफ को भी बुला लिया है। भाई एकाउण्ट रखता है।" फिर पुकारकर कहा, "रवि इधर आना ; प्रोफेसर साहब से मिलो ।"

रवि कैश-काण्उटर छोड़कर आया, परिचय हुआ । कुछ देर इधर-उधर की बातें हुई और फिर लौट गया ।

विश्व सबकी पसन्द जानता है, बच्चे कबाब खाएंगे, उसे लैम्बकरी पसन्द है। किरन हमेशा वही खाती है, खोया-मटर, दही-वड़े, आलू के परांठे । थोड़ा-बहुत हेर-फेर चाहे जो हो जाए, जैसे कभी चने मंगा लिए तो कभी परांठे की जगह नान ले ली। शिथिल उंगलियों में मेन्यू पकड़े किरन ने छपे हुए हरफों पर नज़र दौड़ाई।

"वही," उसने कहा ।

मेज़पोश पर कुछ धव्वे हैं, टेपरिकार्डर पर सहगल का एक बहुत पुराना गीत चालू है। पास की मेज़ पर एक भारतीय परिवार बैठा हुआ है, पहले कभी नहीं देखा। स्त्री नीली औरंगाबादी साड़ी पहने हुए है और शायद कुछ अटपटा-सा महसूस कर रही है। पर किरन के केश-विन्यास और कपड़ों को एकटक घूरती रही। विश्व बड़ा सन्तुष्ट दीख रहा है। 'आगरा' में भोजन करने के बाद अक्सर ऐसा भाव मुंह पर आ जाता है ।

"बहुत खा लिया ।" उसने कहा ।

नीता और लीना बहुत एकाग्र होकर मीठी डिश खा रही हैं, उनकी कटोरियों की सेवई बड़ी तेज़ी से कम होती जा रही हैं। चम्मच से कटोरी एकदम साफ करते हुए लीना ने कहा, "आह ।"

"कैसी पेटू है !" नीता ने किरन से कहा ।

"क्यों बेटी, कुछ और खाओगी ?" विश्व ने लीना से पूछा ।

लीना ने पहले मां को देखा, फिर बहिन को, फिर सिर हिलाकर कहा—"हां, आइसक्रीम ।"

नीता खिलखिलाकर हंस पड़ी ।

लीना झेंप गई। "नहीं और कुछ नहीं," उसने कहा। एकाएक उसकी आंखें डबडबा आई ।

किरन ने अपनी बाईं बांह से उसे घेर लिया और विश्व से कहा, "आप मंगाइए, हम सब खाएंगे। नीता भी।"

कुल्फी के लिए कुछ इंतज़ार करना पड़ा। नया टेप चल रहा था, लोग काफी तादाद में आने लगे, और बाहर सड़क पर सैकड़ों रंगीन बत्तियां झिलमिला उठीं।

किरन दायें हाथ की उंगली से मेज़पोश पर अदृश्य लकीरें खींचती रही, बारिया की उम्र क्या होगी, ज़्यादा से ज़्यादा तेईस। फिर बारिया आकर खड़ी हो गई, नाटे क़द की दुबली-पतली, थोड़ी-सी आर्टिफिशल लगनेवाली लड़की। लम्बे खुले हुए बाल, आधे आगे, आधे पीठ पर, बड़ी-बड़ी आंखें, दो वर्षों से मैक्स की असिस्टेंट थी।

"लो सीना, आ गई कुल्फी। संभलकर खाना।" किरन ने कहा।

सीना मुसकराने लगी, कितनी चमकदार, कितनी सुन्दर आंखें हैं लड़की की!

• "कुल्फी अच्छी है।" विश्व ने कहा।

किरन ने एक चम्मच से थोड़ी-सी चखी, हां—और आधी से अधिक सीना की प्लेट में डाल दी।

अब सन्नाटा था। सीना और नीता कपड़े बदलकर, नहाकर, टेलिविज़न पर अपनी पसंद का शो देख चुकने के बाद, अपने-अपने कमरों में चली गई थीं। उनके जाने के बाद विश्व ने टेलीविज़न बंद कर दिया और कोन्याक की बोतल खोलने लगा।

किरन रसोई में बचे-खुचे बर्तन धोने लगी। बाद में हाथ पोंछकर, हैण्डलोशन मलती हुई आई, और विश्व को बोतल खोलते हुए देखने लगी।

सावधानी से दो गिलासों में डालकर एक गिलास उसे पकड़ाते हुए विश्व ने कहा, "वेलकम बैक रानी!"

"थैंक यू डार्लिंग!" किरन ने उत्तर दिया।

उस सन्नाटे में, पास-पास बैठे वे छोटे-छोटे घूंट लेते रहे, चुपचाप, बहुत संतुष्ट, एक-दूसरे में रमे हुए आदर्श पति-पत्नी की तरह।

फिर किरन ने कहा, "सुना हो होगा, मैक्स ने बारिया से शादी कर ली है।"

"हां," विश्व ने कहा, "विभाग के लोगों ने मिलकर प्रेज़ेंट दिया है। हनीमून के लिए मॅरिशस गए थे, शायद अभी भी वहीं हों।"

वह ऐश्ट्रे में पाइप उलटकर राख झाड़ने लगा। किरन ने कहा, "इस बार

ठण्ड जल्दी आ गई।"

"हां। और ?" विश्व ने किरन का गिलास उठाते हुए पूछा।

"नहीं।" उसने कहा, वह अपनी जगह पर बैठी-बैठी विश्व की ओर देखती रही। फिर एकाएक ही उठकर उसने विश्व का हाथ पकड़ लिया और मंद स्वर में कहा, "आइए, अब बिस्तर पर चलें।"

टूटे हुए

इस रात नींद नहीं आती। बिस्तर पर लेटा हुआ हूं। वाई० एम० सी० ए० का छोटा-सा कमरा, सोलहवीं मंज़िल पर। बाहर की ओर एक खिड़की खोल देने पर लाखों-लाखों चमकती, झिलमिलाती, उजली, सफेद, रंगीन बत्तियों का आलोक कमरे में छा जाता है। हर दो मिनट पर धड़धड़ाती हुई इलेक्ट्रिक ट्रेन पुल पर से निकल जाती है और उसके शोर में नीचे निरंतर चलती हुई ट्रैफिक का रव दब जाता है।

मैं उठकर खिड़की के पास आ गया हूं। हवा ठंडी है, दोनों बांहें सीने पर बांध मैं आगे झुककर बाहर देखने लगा हूं। दूर बत्तियों के पार, अंधेरे का एक बड़ा-सा धब्बा है, मैं जानता हूं कि वह सब अन्धकार निर्जन नहीं, वहां लहरें हर क्षण आ-आकर तट से टकरा रही हैं, उसके किनारे बैठकर मैंने जल पर चंद्रोदय देखा था, क्या वह आज की ही संध्या थी? महानगरी का कोलाहल, भाग-दौड़ पीछे छूट चुकी थी; मिशिगन सागर की ओर से रह-रहकर ठंडी हवा के झोंके आ रहे थे; मेरी दाहिनी बांह के रोम रह-रहकर खड़े हो जाते। कुछ दूर ऊंचाई पर वीपिंग विलो का एक वृक्ष झुका-सा खड़ा था।

वह रेत पर लेटी थी। पैर फैलाए, कुछ लापरवाही से। साड़ी का किनारा नीचे से काफी गंदा हो गया था। फिर भी, उसने रेत व मिट्टी से उसे अलग करने की कोई चेष्टा न की। रेत पर उसने अपना कोट बिछा लिया था और उसके बालों ने छिटककर माथे व बाईं आंख को थोड़ा-सा ढक लिया था; वह एकटक आकाश को ताक रही थी।

उसका एक हाथ मेरे बहुत निकट आ गया। नाखूनों पर मटियाली पालिश और [illegible], [illegible] उंगलियां। वह लेटी थी, मौन, [illegible] अलसाई-सी और सामने मिशिगन सागर था, पीछे शिकागो नगर [illegible]

[illegible]।

आज उसने कितनी बातें की थीं।

वह बोलती कम है। उसकी भाव-भंगिमा उसके विचारों को कभी-कभी प्रकट कर देती है। अधिकतर वह अपने को एक मौन रहस्य में लिपटा रखना चाहती है। पर आज मुझे लग रहा था कि आज उसका बोलना चुकेगा नहीं, उसके अंदर का कोई अवरुद्ध द्वार खुल गया था। मैं कुछ आश्चर्य से उसकी बातें सुनता रहा। उसमें कहानीकार की सी सहज प्रवहमानता है। कई बार सोचा कि उससे कहूं, पर उसकी विद्रूपता-भरी हंसी सहन न होगी।

मुझे यह भी डर था कि वह चुप हो जाएगी और फिर चुपचाप पड़ी-पड़ी उस खुले, धूप-भरे, नीले आकाश को ताकने लगेगी, और मैं उसकी आत्मीयता और निकटता के घेरे से निकाला जाकर एक बार फिर अपने को अपरिचित-सा महसूस करने लगूंगा।

"क्या सोचती हो, तब ?" मैंने पूछा। अपने को क्रिया-कलापों से अचानक हटाकर आत्मलीन हो जाना उसके लिए बहुत साधारण है।

"कुछ नहीं। कुछ भी नहीं। मन तब खाली पात्र-सा हो जाता है। एक ऐसा पात्र जिसके तल में एक बड़ा-सा छेद हो और एक बूंद पानी भी न टिक सके। कुछ भी न करने, कुछ भी न सोचने की ऐसी स्थिति में मैं एक ऐसी झील-सी बन जाती हूं जिसमें कहीं नन्ही-सी हिलोर भी नहीं उठती, जो कांच की तरह जमी हुई, निश्चल, सूने आकाश के नीचे बिखरी पड़ी हो।"

बालू भीगती जा रही थी! पानी के ऊपर आकाश दहकता लाल हो आया था। वह कोट बिछाकर उसपर लेटी हुई थी, स्थिर, निश्चल, झील-सी।

आकाश स्वच्छ था, कहीं बादल का एक टुकड़ा भी नहीं। बैठे-बैठे मेरे पैर सो गए थे। चाहता था कि मैं भी रेत पर लेट जाऊं उसके समीप, साहस नहीं हुआ। अगर इतना दब्बू न होता तो ठीक रहता। स्मार्टनेस से ही काम बनता है। मैं अपनी सीमाएं जान रहा था : भारत की एक कंज़रवेटिव युनिवर्सिटी का छात्र, कभी 'स्मार्ट सेट' का अंग नहीं रहा, अंग्रेजी नहीं बोली, कॉफी हाउस में नहीं बैठा, रोमाण्टिक साहित्य नहीं पढ़ा। भाषा-विज्ञान का छात्र हूं—रूखा नीरस विषय। वह एक प्रमुख प्रोफेसर की पत्नी है—कटे हुए बाल, ऊंची एड़ी के सैण्डिल, स्मार्ट; कार चलाती है, गर्मी में सैल करती है।

मेरे आने के कुछ ही दिन बाद उससे परिचय हुआ था, हम दोनों एक ही

जाति के हैं, एक ही शहर के, एक भाषा-भाषी।

तब वह कितनी प्रसन्न हुई थी।

मुझे आए थोड़े ही दिन हुए थे। आठवीं स्ट्रीट पर एक फ्लैट में टिका हुआ था। एक साथी और था। सस्ता मकान था, पुराना, गन्दा, पर और कोई उपाय न था, साल-भर के कांट्रैक्ट पर हस्ताक्षर कर चुका था। बाकी सभी किरायेदार भारतीय थे, दो पाकिस्तानी। सारे दिन हींग, नारियल के तेल और विविध मसालों की गन्ध गलियारों में मंडराया करती थी।

एक दिन लाइब्रेरी से लौटकर देखता हूं कि घर के आगे उसकी गाड़ी खड़ी है। लाल रंग की स्पोर्ट्स कार। घबरा गया, सोफे पर सोता था और जाने से पहले सारे कपड़े इधर-उधर बिखेर गया था। पहली प्रतिक्रिया हुई भाग खड़े होने की, पर मन कड़ा कर अन्दर गया। वह सोफे पर बैठी थी। मेरे कपड़े वहां नहीं थे, पास में ऊपर वाली मिसेज नायक बैठी थी, मिसेज नायक के पति उसके पति के असिस्टेण्ट थे। वह चाय पी रही थी, उसके हाथ में जो चाय का प्याला था, वह साबुन का डिब्बा खरीदने पर मुफ्त मिला था, मैचिंग प्लेट अभी नहीं थी।

वह मुझे देखकर बोली : "इतनी-इतनी देर लाइब्रेरी में बैठे रहते हो, एक बार जो बीमार पड़े तो फिर पनप नहीं पाओगे।"

मैंने उत्तर में कुछ नहीं कहा, किताबें मेज पर रखकर कुर्सी खींचकर बैठ गया।

"तुम्हें खाने पर कई दिन से बुलाना चाहती थी। इस शनिवार को आ सकोगे ?"

"सिर्फ इसीलिए इतनी तकलीफ की ?" मैंने कहा।

पहली बार लगा कि उसके यहां बैठने से कमरे का सारा शोहदापन फोकस में आ गया है। *अंगूर की बेलों वाले छापे का हरा वालपेपर,* धूल-भरे प्लास्टिक के पर्दे, ढीला-ढाला सोफा।

वह उठ खड़ी हुई, प्याले को मेज पर रखती हुई बोली : "तो शनिवार को मैं लेने आऊंगी।"

"नहीं, नहीं, मैं स्वयं आ जाऊंगा।"

"स्वयं नहीं आ सकोगे। काफी दूर घर है, रास्ता भी आसान ..."

"टैक्सी से···" मैंने कहा।

"शनिवार को, छह बजे।" उसने कहा : "तैयार रहना।" उसने अपना पर्स
। और चली गई। मैं दरवाजे तक पहुँचाकर मैं वापस आकर कुर्सी पर
गया।

मिसेज नागर अब भी बैठी थी और काफी प्रभावित-सी लग रही थी। कल
हो गए उसके और उसके पति के रहन-सहन के बारे में बता रही थी। दो वर्ष
ए, उन्होंने शहर के सबसे फैशनेबल भाग में घर खरीदा है। कम ही प्रोफेसर
तना कुछ अफोर्ड कर पाते हैं। पर वे साधारण प्रोफेसर नहीं, यदि कुछ वर्षों में
न्हें नोबेल प्राइज भी मिल तो किसीको आश्चर्य न होगा। पत्नी का बहुत
ख्याल करते हैं, उसे स्वतन्त्रता भी खूब दे रखी है। विवाह के बाद एक सन्तान
हुई थी, जिसकी शायद मृत्यु हो गई, तब वे दोनों यहाँ नहीं थे, उसके बारे में
कभी कोई जिक्र नहीं करता।

मिसेज नागर से पीछा छूटा तो मैं अन्दर बालकनी के कमरे में गया। मेरी सभी
चीज़ें उसकी चारपाई पर करीने से रखी हुई थीं। तौलिये, रात के कपड़े, मेरे
गिलाफ वाला तकिया, मेरा उधड़ा हुआ कम्बल…

यही मेरे जीवन का यथार्थ था जोकि उसके आगे अनायास खुल गया
था।

मेरे मन में कुछ चुभने-सा लगा था। मेरी मजबूरियाँ यहाँ भी पीछा कर रही
थीं। छात्रवृत्ति का आधा भाग घर भेज देता था, वहाँ माँ थी, गाँव में घर, विवाह-
योग्य बहन, कालेज में पढ़ता भाई।

फिर अपने पर क्रोध हो आया। कमरा तो साफ रख सकता था, रात
कपड़े और गिलाफ, तौलिये नियमित रूप से धोए जाएँ तो कम-से-कम साफ
दिखेंगे।

सुबह से ही मैंने खूब सफाई की। मकान-मालिक से वैक्यूम क्लीनर
कर फर्श साफ किया; एक-एक किताब उठाकर धूल पोंछी और पाँच बजे
कपड़े पहनकर तैयार हो गया।

इस अनजान प्रदेश में कोई भी निकट का नहीं, मित्र नहीं, कहीं आना
भी नहीं होता, कभी-कभी खड़ा होकर पोस्टर पढ़ लेता हूँ…आसपास
संगीत, फिल्में, भाषण, जीवन की कोलाहल-भरी नदी चारों ओर बा
उसके बीचोंबीच खड़ा होकर मैं तपस्वी-सा एकाग्र, अपने को तटस्थ रख

से भी होगा, ढाई साल में डॉक्टरेट लेकर लौटना ही है, क्योंकि घर है, मां है, विवाह-योग्य वहन है और मन पर एक चेहरे की धुमिल छाप भी है। उसका नाम शशिवाला है। पढ़ रही है, साथ में मेरे लौटने की प्रतीक्षा भी कर रही है। अभी सम्बन्ध में केवल इतना ही है। मध्यवित्त पिता की पुत्री, मेरी मां को पुत्रवधू के रूप में ग्राह्य है।

शशिवाला के बारे में सोचना चाहता हूं। कुछ समय पहले एक सम्बन्धी की बारात में गया था, वहीं उसे देखा था। जो बीच में पड़े थे उन्होंने कहा, देख लो लड़की, वधू के पास जो नीली साड़ी पहने बैठी है, वही है। शायद उसे भी जता दिया गया होगा; मुझसे दृष्टि मिलने पर वह लजाकर थोड़ा-सा मुड़ गई थी। साधारण रूप-रंग, दो चोटियां, नीली प्रिण्ट की साड़ी! उसका लजाना अच्छा लगा। शशिवाला, तुमसे इतना ही परिचय है। तुम ध्यानरत होकर अध्ययन कर रही हो, मैं अपना कमरा साफ कर रहा हूं, क्योंकि वह लेने आएगी।

पर वह अन्दर नहीं आई। छह बजने से काफी देर बाद उसकी गाड़ी सड़क पर दौड़ी, बाहर ही से हॉर्न बजाकर उसने बुलाया। मैं जिस तेज़ी से बाहर झपटा, उससे शायद बागची को आश्चर्य हुआ हो। उतनी नीची गाड़ी के अन्दर घुसने में थोड़ी-सी दिक्कत हुई। मेरे कुण्डली-सी मारकर बैठने पर वह थोड़ा-सा हंसी, गाड़ी चलने पर साड़ी से पैर खुल गए, देखता हूं वह नंगे पैरों है। अपना आश्चर्य छुपा लेता हूं। वह हल्के-से बादामी रंग की साड़ी पहने है। चेहरे में कोई अन्तर नहीं, कन्धों तक बाल, प्रसाधनहीन मुख। सड़क पहियों के नीचे फिसलती जाती है, पहले कैम्पस पीछे छूटता है, फिर शहर।

"अच्छी तरह हो?" वह पूछती है। स्वर में ढेर-सा बड़प्पन आ गया है।

"हां।" मैं कहता हूं: "और आप?"

"मुझे 'तुम' क्यों नहीं कहते? मैं तो तुम्हें 'आप' नहीं कहती। मैं बहुत बड़ी हूं, इसलिए क्या?" कहकर वह अपनी बात पर स्वयं हंसती है। वह देखने से बीस-इक्कीस की लगती है, इससे अधिक तो बिलकुल भी नहीं। वह आयुहीन है, पचास वर्ष की होने पर भी ऐसी ही लगेगी, हलकी-फुलकी, चपल, युवा।

"सब कोई मुझे टीटी कहते हैं। तंत्री त्रिपाठी नाम का संक्षिप्त रूप। साहित्यिक रुचि की मां की देन है।"

घर आ गया है, अंधेरा हो जाने के कारण साफ नहीं दीखता। टीटी उतर-

र खड़ी है, मेरी प्रतीक्षा में। मुझे उतरने में देर लगती है, टीटी के नंगे पैरों पर थरों का स्पर्श मुझे पीड़ा-सी दे रहा है।

दरवाजा खुलता है; लम्बे गौरवर्ण यह पुरुष उसके पति होंगे। परिचय राती है।

वह मेरा कोट ले लेते हैं, और जब तक वह उसे टांगते हैं, मैं अनिश्चित-सा गलियारे में खड़ा रहता हूं।

वह दाहिनी ओर के एक दरवाज़े में लुप्त हो गई है। प्रोफेसर मुझे बैठक में ले आते हैं। सोफे पर आदर से बैठाकर स्वयं पास बैठते हैं, और मृदु स्वर में मेरा हाल-चाल पूछते हैं।

मिसेज़ नायक मुझे उनके बारे में भी बता चुकी है। वह दक्षिण प्रदेश के हैं, प्रख्यात वैज्ञानिक, जब भी भारत जाना चाहते हैं, उन्हें यहां अधिक सुविधाओं की व्यवस्था कर रोक लिया जाता है। फिर टीटी भारत नहीं लौटना चाहती। प्रोफेसर कृष्णमूर्ति ने धीरे-धीरे मुझसे मेरी पढ़ाई-लिखाई, घर-बार, छात्रवृत्ति आदि के बारे में पूछ लिया है।

"आप परिवार को साथ नहीं लाए ?" वह पूछते हैं। उनका मुख वैसा ही शान्त और निरुद्विग्न है।

"लाना चाहता था पर आर्थिक समस्याओं के कारण सम्भव नहीं हुआ।" मैं उत्तर देता हूं। झूठ नहीं है, सम्भव होता तो शशिबाला को साथ लाता, विवाह करने के बाद। कम-से-कम घर का काम-धन्धा तो न करना पड़ता।

कुछ देर में टीटी कमरे में आती है, पति को सम्बोधित कर कहती है : "ह कुछ पीने-वीने को नहीं देंगे क्या ?"

प्रोफेसर तुरन्त उठ खड़े होते हैं, द्वार की ओर बढ़ते हुए पूछते हैं : "व लेंगे आप ?" मैं टीटी की ओर देखता हूं, प्रश्नसूचक दृष्टि से।

"शेरी दीजिए इसे। प्रारम्भ हो।"

शराब का नाम सुनकर मैं तुरन्त कहता हूं : "नहीं, मैं शराब नहीं पीता। और ले लूंगा, फ्रूटजूस।"

प्रोफेसर बहुत थोड़ा-सा मुस्कराते हैं, उनके ओंठ खिचकर रह जाते टीटी एक ओर झुकती हुई हंस रही है : "इस घर में तुम्हें फ्रूटजूस नहीं मि जो दिया जाएगा, पीना पड़ेगा।"

अब वह नन्ही-सी बच्ची लगती है, मुझे चिढ़ाते हुए उस दुष्टता-भरी मुद्रा में।

प्रोफेसर लाकर ग्लास मुझे भी देते हैं। पेय का स्वाद बुरा नहीं है।

कमरे में हम तीनों अब मौन हैं। प्रोफेसर जैसे उस मौन में अन्तर्मुखी हो डूब गए हैं, टीटी दूसरे सोफे की पीठ से गाल सटाए हुए अधलेटी-सी है, एक बांह फैलाए हुए। उंगली में एक हीरे की अंगूठी है।

मैं सीधा-सतर बैठा हूं, कोई आरामदेह पोजीशन नहीं है, पर मैं डरता हूं कि इस अनजान पेय से कहीं नशा न आ जाए; इसलिए धीरे-धीरे चखता हूं।

क्या कोई नहीं बोलेगा? देख रहा हूं कि टीटी ने अपना ग्लास छुआ तक नहीं है, प्रोफेसर वैसे ही बैठे हैं, दीवार की ओर ताकते हुए, कमरे में कहीं कोई शब्द नहीं। जैसे मैं किसी निर्जन वन में भटक आया हूं। मुझे भूख लग रही है। सहसा वह उठकर बैठ जाती है और वेग से कमरे के बाहर चली जाती है।

कमरे में यदि वह ग्लास न होता तो यह न लगता कि वहां कभी टीटी भी थी। कमरे के कोने-कोने में जो पोल लैम्प है, उसके तीनों बल्ब जल रहे हैं। तीनों के 'शेड' भिन्न रंग के हैं, यह पहली बार ही मेरी दृष्टि में पड़ता है। आमने-सामने दो सोफे हैं, दो-तीन तरह की कुर्सियां; किसी सुन्दर पेड़ की आपस में गुंथी हुई शाखाओं को काटकर मेज़-सी बनाई गई है, जिसके ऊपर पारदर्शी कांच है, जिससे वे गुंथी हुई शाखाएं स्पष्ट दिखाई देती हैं। मैं सोच उठता हूं कि ऐसी विचित्र शाखाएं पहले कभी नहीं देखीं। पारदर्शी कांच पर छोटा-सा रूमाल के जितना नैपकिन रखा है; और एक गिलास, जिसे बिना ओठों से लगाए टीटी उठ गई है।

मेरे शरीर में अचानक ही ढेर-सी थकान भर उठती है। मैं भोजन कर, शीघ्र लौट जाने को आकुल हो उठता हूं।

प्रोफेसर जैसे ऊंघ गए हों। बाहर शायद तेज हवा चलनी प्रारम्भ हो गई होगी। कमरे के गहरे, गाढ़े मौन के बाहर सीत्कार करती हुई पेड़ों की शाखाएं हैं; वह स्वर जैसे दूर तक फैलता जा रहा है।

मुझे लगने लगा कि मैं एक अतीन्द्रिय, मायावी जगत् का एक पात्र हूं। कमरा, उसका फर्नीचर, यहां तक कि अपना ग्लास हाथ में पकड़े बैठे प्रोफेसर, सभी मुझे बड़े दूर, धुंधले और अयथार्थ-से लगने लगे। केवल तेज हवा का स्वर यथार्थ था

और हर नया झोंका जो शाखाओं को झकझोरता हुआ दूर तक चला जा रहा था, उसकी आवाज़ निरन्तर मेरे कानों में तेज़ होती चली जा रही थी। तभी टीटी दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गई और बोली : "भोजन मेज़ पर लग गया है !"

प्रोफेसर जिस सहजता से उठकर खड़े हो गए, उससे मुझे लगा कि वह शायद पूरे समय सजग रहे होंगे।

मेरे ग्लास मेज़ पर रखने की खट शायद सभीको इतनी तेज़ लगी होगी··· टीटी की आंखें एक बहुत छोटे पल को मुझपर रुकीं, फिर वह आगे-आगे चली, मुझे राह-सी दिखाती हुई।

भोजन करते हुए, कुछ बात करना अपेक्षित है, इसलिए मैंने उस मेज़ के बारे में पूछ लिया। टीटी खिलखिलाकर हंस पड़ी, देर तक हंसती रही, मैं कुछ झेंप-सा आया और मुझे लगा कि मुझसे अनजान में ही कुछ अशोभनीय बात हो गई है। उधर टीटी थी कि हंसते-हंसते मेज़ पर औंधी-सी हो आई थी। सहसा उसकी हंसी बहुत अस्वाभाविक-सी लगने लगी और मैं जान न सका कि वास्तव में वह हंस रही है या वह हंसी एक प्रकार की दुःख-भरी, हिचकियों वाले रुदन में बदल गई है।

प्रोफेसर कुर्सी पीछे खिसकाकर उठ खड़े हुए और टीटी के कंधों पर भार देकर उठाते हुए उन्होंने उसे पुकारा।

मैं उस समय टीटी का मुख देखकर स्तब्ध हो आया, वह एकदम चुप हो आई थी, पलकें आंखों पर झुक आई थीं और होंठों पर कुछ ऐसी असह्य यातना का सा भाव था जैसे किसीने उसकी पीठ में छुरा भोंक दिया हो।

प्रोफेसर ने उसे उठाकर खड़ा कर दिया और फिर उसे दाहिने हाथ से सहारा देकर द्वार की ओर बढ़ते हुए उन्होंने मुझसे कहा : "हमें कुछ देर के लिए क्षमा कीजिएगा।"

मैं पत्थर-सा हो आया, उनके कंधे पर झूलते टीटी के मुख को एकटक ताकता हुआ। अब उसका मुख नहीं दीखता, बालों ने आगे गिरकर उसे ढक लिया है। कमरे में मैं अकेला हूं। तीनों प्लेटों में अभी भी भोजन है, मेरी भूख एकाएक मिट गई है।

कुछ देर में प्रोफेसर लौट आए हैं। अपनी जगह बैठकर वह मुझसे कहते हैं : "थके होने पर वह कभी-कभी इसी प्रकार उत्तेजित हो जाती है। आप चिंतित न

हों। खाइए, आप रुक क्यों गए ?"

"पर आपकी पत्नी ?" मैं पूछता हूं।

"उसे मैंने सोने की दवा दे दी है।"

भोजन के बाद प्रोफ़ेसर ने मेरे वापस लौटने के लिए टैक्सी बुला दी। उन्हें अत्यन्त धन्यवाद देकर मैं जब लौटने लगा तब भी मेरे ऊपर गहन अवसाद जम गया था जोकि प्रोफ़ेसर के घर से अपने घर तक लम्बी ड्राइव के बाद भी कम न हुआ।

रविवार की शाम। सुबह जल्दी ही उठकर घर से निकल गया था। जैसे अपने कमरे में अब रहा न जा सकेगा। सारा दिन लाइब्रेरी में बिताकर, संध्या को थका हुआ लौट रहा हूं। मन में ढेर-सा संतोष है, काफ़ी काम कर लेने का। साथ ही एक अव्यक्त-सी उदासी भी, जो सप्ताहांतों को अक्सर मन पर छा जाती है। तब शशिबाला की याद करने का प्रयत्न करता हूं, पर चेहरा जैसे मानस-पटल से एकदम पुंछ गया है, शेष है नीली साड़ी की धुंधली-सी याद।

जेब से चाभी निकालकर दरवाज़ा खोलता हूं। गलियारे में आते हुए ही घी में भुनी हुई अदरक की सुगन्ध नाक में भर जाती है। मैं अपने कमरे का दरवाज़ा ठेलकर खोलता हूं और वहीं ठिठककर खड़ा रह जाता हूं।

सोफ़े पर टीटी लेटी है, आहट सुनकर उसने शायद ग्रीवा मोड़कर दरवाज़े की तरफ़ देखा है, मुझे वहां पाकर भी वह हड़बड़ाकर उठी नहीं है। सहज भाव से लेटे-लेटे कहती है : "भास्कर, आ गए तुम ?" मैं झुककर ब्रीफ़केस नीचे रख देता हूं। दाहिनी बांह मोड़कर उसने सिर के नीचे रख ली है, बायीं बांह नीचे झूल रही है, साड़ी हलके-से बादामी रंग की है, जिसकी सिल्क टेबिल लैम्प के प्रकाश में झिलमिला रही है।

मैं खड़ा हूं, एकाएक अपने ही घर में अजनबी-सा महसूस करता हुआ।

"आप···तुम कब आईं ?"

"दोपहर को आ गई थी," अब वह उठकर बैठती है। बाल आज पीछे इकट्ठा कर बांध लिए गए हैं। पहली बार उसका चिकना, उघड़ा हुआ माथा देख रहा हूं। "तुम थे नहीं। सारा घर खाली पड़ा था। मैं किताब पढ़ने लगी, उसीमें मन

और हर नया झोंका जो शाखाओं को झकझोरता हुआ दूर तक चला जा रहा था, उसकी आवाज निरन्तर मेरे कानों में तेज होती चली जा रही थी। तभी टीटी दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई और बोली : "भोजन मेज पर लग गया है !"

प्रोफेसर जिस सहजता से उठकर खड़े हो गए, उससे मुझे लगा कि वह शायद पूरे समय सजग रहे होंगे।

मेरे ग्लास मेज पर रखने की खट शायद सभीको इतनी तेज लगी होगी··· टीटी की आंखें एक बहुत छोटे पल को मुझपर रुकीं, फिर वह आगे-आगे चली, मुझे राह-सी दिखाती हुई।

भोजन करते हुए, कुछ बात करना अपेक्षित है, इसलिए मैंने उस मेपल के बारे में पूछ लिया। टीटी खिलखिलाकर हंस पड़ी, देर तक हंसती रही, मैं कुछ झेंप-सा आया और मुझे लगा कि मुझसे अनजान में ही कुछ अशोभनीय बात हो गई है। उधर टीटी थी कि हंसते-हंसते मेज पर औंधी-सी हो आई थी। सहसा उसकी हंसी बहुत अस्वाभाविक-सी लगने लगी और मैं जान न सका कि वास्तव में वह हंस रही है या वह हंसी एक प्रकार की दुःख-भरी, हिचकियों वाले रुदन में बदल गई है।

प्रोफेसर कुर्सी पीछे खिसकाकर उठ खड़े हुए और टीटी के कंधों पर भार देकर उठाते हुए उन्होंने उसे पुकारा।

मैं उस समय टीटी का मुख देखकर स्तब्ध हो आया, वह एकदम चुप हो आई थी, पलकें आंखों पर झुक आई थीं और होंठों पर कुछ ऐसी असह्य यातना का सा भाव था जैसे किसीने उसकी पीठ में छुरा भोंक दिया हो।

प्रोफेसर ने उसे उठाकर खड़ा कर दिया और फिर उसे दाहिने हाथ से सहारा देकर द्वार की ओर बढ़ते हुए उन्होंने मुझसे कहा : "हमें कुछ देर के लिए क्षमा कीजिएगा।"

मैं पत्थर-सा हो आया, उनके कंधे पर झूलते टीटी के मुख को एकटक ताकता हुआ। अब उसका मुख नहीं दीखता, बालों ने आगे गिरकर उसे ढक लिया है। कमरे में मैं अकेला हूं। तीनों प्लेटों में अभी भी भोजन है, मेरी भूख एकाएक मिट गई है।

कुछ देर में प्रोफेसर लौट आए हैं। अपनी जगह बैठकर वह मुझसे कहते हैं : थके होने पर वह कभी-कभी इसी प्रकार उत्तेजित हो जाती है। आप चिंतित न

हों। खाइए, आप रुक क्यों गए?"

"पर आपकी पत्नी?" मैं पूछता हूं।

"उसे मैंने सोने की दवा दे दी है।"

भोजन के बाद प्रोफेसर ने मेरे वापस लौटने के लिए टैक्सी बुला दी। उन्हें अत्यन्त धन्यवाद देकर मैं जब लौटने लगा तब भी मेरे ऊपर गहन अवसाद जम गया था जोकि प्रोफेसर के घर से अपने घर तक लम्बी ड्राइव के बाद भी कम न हुआ।

रविवार की शाम। सुबह जल्दी ही उठकर घर से निकल गया था। जैसे अपने कमरे में अब रहा न जा सकेगा। सारा दिन लाइब्रेरी में बिताकर, संध्या को थका हुआ लौट रहा हू। मन मे ढेर-सा संतोष है, काफी काम कर लेने का। साथ ही एक अव्यक्त-सी उदासी भी, जो सप्ताहांतों को अक्सर मन पर छा जाती है। तब शशिबाला की याद करने का प्रयत्न करता हूं, पर चेहरा जैसे मानस-पटल से एकदम पुछ गया है, शेष है नीली साड़ी की धुंधली-सी याद।

जेब से चाभी निकालकर दरवाज़ा खोलता हूं। गलियारे मे आते हुए ही घी मे भुनी हुई अदरक की सुगन्ध नाक में भर जाती है। मैं अपने कमरे का दरवाज़ा ठेलकर खोलता हूं और वहीं ठिठककर खड़ा रह जाता हूं।

सोफे पर टीटी लेटी है, आहट सुनकर उसने शायद ग्रीवा मोड़कर दरवाजे की तरफ देखा है, मुझे वहां पाकर भी वह हड़बड़ाकर उठी नहीं है। सहज भाव से लेटे-लेटे कहती है: "भास्कर, आ गए तुम?" मैं झुककर ब्रीफकेस नीचे रख देता हूं। दाहिनी बांह मोड़कर उसने सिर के नीचे रख ली है, बायीं बांह नीचे झूल रही है, साड़ी हलके-से बादामी रंग की है, जिसकी सिल्क टेबिल लैम्प के प्रकाश मे झिलमिला रही है।

मैं खड़ा हूं, एकाएक अपने ही घर मे अजनबी-सा महसूस करता हुआ।

"आप···तुम कब आईं?"

"दोपहर को आ गई थी," अब वह उठकर बैठती है। बाल आज पीछे इकट्ठा कर बांध लिए गए हैं। पहली बार उसका चिकना, उघड़ा हुआ माथा देख रहा हूं। "तुम थे नहीं। सारा घर खाली पड़ा था। मैं किताब पढ़ने लगी, उसीमें मन

रम गया।" उसने मेरे आगे किताब झुलाई।

"कुछ चाय वगैरह पिएंगी?"

"नहीं, अब जाऊंगी। प्रोफेसर आने वाले होंगे।"

वह उठकर खड़ी होती है, और हाथों से साड़ी की सलवटें ठीक करती है। फिर किताब मेज़ पर डाल देती है, और पर्स उठाकर चलने को तैयार दीखती है।

मैं उससे रुकने को नहीं कह पाता। हमारी रसोई बहुत छोटी है, गंदी भी। ज़मीन का फर्श उघड़ चुका है, कई तकाज़ों पर भी मकान-मालिक ने कुछ नहीं किया। बर्तन कालिख-पुते हैं, प्लेटें एक भी मैच नहीं करतीं।

वह चलते-चलते रुक जाती है: "क्या कल तुम बहुत घबरा गए थे?"

"नहीं तो।" मैं उत्तर देता हूं। "गलती शायद मेरी थी।" मैं कहकर प्रतिक्रिया के लिए उसकी ओर देखता रहता हूं। मैं जानता हूं कि उस बेतुकी मेज़ के बारे में अब भी मेरी जिज्ञासा शांत नहीं हुई है।

उसका स्पर्श मेरे हाथों पर पक्षी के पंखों की भांति हलका व उड़ता हुआ है। "गलती, भास्कर, किसीकी नहीं है।" उसका मुख अन्धकार में है; और फ़िर वह चली गई है। मैं पुस्तक उठाकर देखता हूं, भाषा-विज्ञान की एक रसहीन व्याख्या है, उसे आलमारी में रखते हुए मैं पाता हूं कि संध्या की वह उदासी किसी और ही अव्यक्त, गहन भावना में बदल गई है।

मैं बैठकर बागची की प्रतीक्षा करता हूं। रविवार के दिन भोजन बनाने की बारी उसकी है।

"आज क्या वह फिर आई थी?" बागची अन्दर घुसते ही पूछता है।

"कौन?"

"वह प्रसिद्ध गणितज्ञ की प्रसिद्ध पत्नी।" बागची की टोन मुझे खटकती है; पर मैं चुप रहता हूं।

"शी इज़ ईविल भास्कर," बागची खूंटी पर कोट टांग रहा है। "मुझे उसे देखकर ऐसी झुरझुरी हो आती है जैसे कि कब्रिस्तान में अकेले गुजरते वक्त लगता है। उससे दूर रहना ही अच्छा।"

"आप मेरे निजी मामलों में दखल क्यों देते हैं?" मैं कहता हूं।

बागची एक ठहाका लगाता है। "समय तुम्हें स्वयं सबक सिखा देगा।" कहता हुआ वह रसोई में चला जाता है।

कुछ देर बाद नायक एक प्याला शक्कर मांगने आता है। "तुम्हारी गुरुपत्नी आजकल हमारे साथी पर बहुत दयालु हैं।" बागची कहता है। मैं कमरे में बैठा सुन रहा हूं। मुझे बागची से चिढ़-सी हो रही है। अपना उपहास सहन नहीं होता।

"अभी नये हैं न! आसमान में उड़ रहे हैं। धीरे-धीरे पता चलेगा।"

नायक कुछ परेशान-सा हो आया है। बागची जान-बूझकर उसे शक्कर देने में देरी कर रहा है।

"भास्कर को उनके बारे में कुछ तो बताओ, नायक।"

उसकी बात अनसुनी-सी कर नायक कहता है: "शक्कर देना हो तो दो। बेकार की बात में क्यों पड़ते हो?"

बागची फिर हंसता है। नायक के जाने पर मैं यथासाध्य कड़े स्वर में बागची को जता देता हूं कि मैं उसके बारे में कुछ भी नहीं सुनना चाहता।

अगली सुबह बागची ने मुझे घर खाली कर देने को कहा। फ्लैट उसीके नाम था। मुझे न जाने क्यों चैन ही सा मिला, और मैं सोत्साह नया कमरा ढूंढने में जुट गया। सूचना नायक को भी मिली होगी, वह यह जानकर हड़बड़ाता हुआ बागची को ढूंढने निकल गया। दूसरे दिन सुबह बागची ने कहा कि उसने इरादा बदल दिया है और मैं पूर्ववत् रह सकता हूं। वह टीटी के प्रति कहे गए शब्दों के बारे में क्षमा चाहता है।

"पर क्या वे बातें सच थीं?" मैं अपने मांस में आत्मपीड़ा की सुइयां-सी चुभोता हुआ पूछता हूं।

"मुझे क्या मालूम?" बागची असहाय भाव से कन्धों को झटका दे बाहर चला जाता है।

मिसेज नायक से पूरी बात पता चलती है। विवाह के बाद से टीटी बीमार ही रहती है। बीमारी का किसीको पता नहीं; डिप्रेशन जब आते हैं तो वह हफ्तों घर से बाहर नहीं निकलती, बोलती-चालती नहीं। कितने अरसे बाद उन्होंने टीटी की मुझसे मैत्री होते देखी है। भारत में आकर नायक का अच्छी नौकरी पाना प्रोफेसर कृष्णमूर्ति पर बड़ा निर्भर है, और बागची अभी भी नायक का ऋणी है। यदि प्रोफेसर को पता चलता कि मुझे टीटी के कारण घर छोड़ना पड़ा है तो वह नायक पर क्रोधित नहीं होते क्या?

अपने किस स्वार्थ से मिसेज़ नायक मुझे यह बता रही है इसे समझने में मुझे
र न लगी।

सिनेमा हॉल में पास बैठी टीटी के चेहरे की सिलवट देखता हूं। वह मेरे और प्रोफेसर के बीच में बैठी है, थोड़ा-सा आगे को झुकी हुई, दत्तचित्त, एकाग्र। हम लोग नाटक देखने साथ आए हैं। मेरा ध्यान बार-बार भटक जाता है। उन दोनों को घर न आना पड़े इसलिए मैं थियेटर में मिलने को तैयार हो गया था। जब मैं पहुंचा तो वे दोनों लॉबी में खड़े हुए थे। टीटी प्रोफेसर से लम्बाई में इतनी छोटी है, यह बात उसी समय मेरे ध्यान में आई। उसका चेहरा कुछ भिन्न लग रहा था, शायद दूसरी तरह से बांधे गए बालों के कारण; आंखें शान्त, और ओंठ एक बहुत सूक्ष्म-सी मुस्कान लिए हुए। ऐसी दूरी और ठण्डेपन से उसने मेरे अभि-वादन का उत्तर दिया जैसे कि मुझे जानती ही न हो। वह एकदम सफेद सिल्क की साड़ी पहने थी, पूरी साड़ी पर चांदी की छोटी-छोटी बूटियां काढ़ी हुई थीं, और जब वह मुड़ी तो मैंने एक हलके-से झटके से पाया कि उसकी ब्लाउज का गला पीछे से इतना खुला था कि उसके दाहिने कन्धे की उभरी हड्डी तक अनावृत थी!

नाटक के दौरान प्रोफेसर का बायां हाथ अक्सर उसकी पीठ को छूने लगत और हर बार वह उसी तरह बैठी-बैठी उनके हाथ को हटा देती।

नाटक समाप्त होने पर हम तीनों थियेटर हॉल में खड़े थे। टीटी ने प्रोग्रा से मुंह पर हवा करते हुए कहा: "मेरा गला प्यास से सूख रहा है। कहीं बैठ कुछ पेय लेने को समय होगा आपके पास ?" उसका प्रश्न पति से था।

प्रोफेसर ने मेरी ओर देखा! फिर कहा: "क्यों न हम सीधे घर चलें! अ पास रेस्त्रां तो सब ठसाठस भरे होंगे।"

"घर ? घर मैं सारे दिन तो घर में थी। मैं घर नहीं जाना चाहती।"

प्रोफेसर बिना कुछ कहे उसकी ओर देखते रहे। मैं वहां अत्यन्त अस्वरि अनुभव करता खड़ा था। मौन के उस अन्तराल का लाभ उठाते हुए मैंने "मैं अब विदा लेना चाहता हूं।"

"ऐसी जल्दी क्या है ?" टीटी ने कहा। पूरी संध्या के बाद उसने पहल मुझे सम्बोधित कर कही थी, "बताइए, क्या तय किया आपने ?"

"मैं तो अब भी कहता हूं कि घर चलो। मुझे अपना कुछ काम भी समाप्त करना है।"

"अगर आप घर ही जाना चाहते हैं तो हम आपको घर उतार देंगे, और फिर मैं इसे लेकर चली जाऊंगी।"

प्रोफेसर की आंखों में जो भाव आ गया था, उसे मैं झेल न सका।

"मुझे तो अब जाना है। कल के लिए बहुत पढाई इकट्ठी हो गई है।" मैंने कहा।

टीटी ने मुझे सीधी, अनझिप आंखो से ताका।

"जैसी तुम्हारी इच्छा।" वह बोली। मैं उसके सामने अपने को अत्यन्त अक्षम, बौना-सा अनुभव कर उठा, जैसे कि मैं वादे से पीछे हट गया होऊं।

"चलो, तुम्हें घर छोड़ते जाएंगे।" प्रोफेसर ने कहा।

उनकी कार देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। बड़ी-सी पुरानी शेवरले थी। आगे तीनों बैठ सकते थे। टीटी अचानक ही अनमनी हो आई है, इसे मैं स्पष्ट देख रहा था। अपने घर के आगे उतरकर मैंने जब उन दोनो को एक सुखद संध्या के लिए धन्यवाद दिया तो उत्तर मे प्रोफेसर मुस्कराए, पर वह उसी तरह मुह फुलाए, रुष्ट, बैठी रही।

काफी दिनों तक उसे नही देखा। गर्मी के लम्बे-लम्बे दिन बीत गए और चारों ओर पतझर छा गया, सारे दिन हवा चलती और सडको पर पत्ते लोटते-फिरते, पूरे वातावरण में एक ऐसा-सा भाव था कि हरेक धूप-भरा दिन जो गया सो गया, इसी कारण तेज हवा के बावजूद भी झील में सफेद पाल वाली नावें तिरती रहतीं, शनिवार को विद्यार्थी-यूनियन का बड़ा प्रांगण खचाखच भर जाता अपराह्न को संगीत-विभाग के छात्र जॉज सेशन प्रस्तुत करते और श्रोता रंगीन मेजों पर कोहनियां टिकाए मिलवॉकी की मशहूर बीयर पीते, और उस संगीत, हंसी, कोलाहल, युवा अंगों की रगड़ के बीच पत्तियां लगातार झरती रहतीं।

मैं प्राय: एक कोने में बैठा हुआ सब कुछ देखता रहता। जिस शनिवार को मेरी टीटी से भेंट हुई, मैं बागची के साथ बैठा था। वह बीयर पी रहा था, और मेरी चाय का प्याला न जाने कब का समाप्त हो गया था। हमारी मेज

से काफी दूर, अलग-सी थी।

"भास्कर।" मेरे कन्धे को धीरे से उसके हाथ ने छुआ। मैंने मुड़कर उसे देखा। फिर बागची को। दोनों का परिचय कराया।

बागची के निमन्त्रण पर वह कुर्सी खींचकर बैठ गई। बागची के पूछने पर कि वह क्या पिएगी, उसने उत्तर दिया : "कुछ भी।"

हमें अकेला छोड़कर वह चला गया। औरों की तरह टीटी ने मेज़ पर कोहनियां टिका लीं। उसके बाल आगे को गिरकर गालों पर छा गए थे।

"कुछ उदास-से दीखते हो भास्कर?" उसके स्वर में बड़ी आत्मीयता थी।

"नहीं तो।" मैंने अचकचाकर कहा।

"यह पतझर का मौसम है ही ऐसा।" उसने धीरे से कहा। हम दोनों ने एक-दूसरे को कुछ पल देखा, फिर मैं आंखें बचाकर झील की ओर देखने लगा।

बागची एक ट्रे में चाय के तीन प्याले ले आया। फीकी, बेस्वाद, गुनगुनी चाय। बागची का व्यवहार देखकर मुझे आश्चर्य हुआ, शिष्टता की मूर्ति बन गया था वह।

उजली धूप सहसा ही लोप हो गई। संगीत समाप्त होने पर अधिकांश लोग चले गए, और तभी कभी बागची भी।

हम दोनों अभी भी बैठे हैं, बिना कुछ बोले। अब वह झील की ओर देख रही है, उसका चेहरा भावशून्य है, उसकी आंखों में एक दूरी।

"झील के उस पार क्या है?" उसके चौंक आने पर मुझे लगता है कि मेरे मुख से हमेशा ही बेतुके प्रश्न निकलते हैं।

"झील के पार? हवाई अड्डा, मैडिकल कालेज, और बच्चों का एक अस्पताल।"

"मैं कभी उस पार नहीं गया हूं।"

"एक दिन तुम्हें ले चलूंगी।"

फिर वह कांपती है, जैसे ठण्डी हो आई हो। "सुनो भास्कर, तुम दो दिन के लिए शिकागो चलोगे? प्रोफेसर एक कान्फरेन्स में जा रहे हैं।"

"मुझे समय···"

"पर, कल तो रविवार है। सिर्फ सोमवार को क्लास मिस होगा।" फिर वह थोड़ा-सा हंस देती है। "मुझे प्रोफेसर के पेपर में कोई रुचि नहीं है। तुम

चलोगे तो तुम्हें शहर घुमाने में दो दिन बीत जाएंगे।"

मैं उत्तर नहीं देता। अशिष्ट नहीं होना चाहता, पर साथ ही वागची की बातें मन में सालने लगी हैं।

रात को प्रोफ़ेसर का फोन आता है: "तन्त्री ने कहा कि तुम शिकागो जाना चाहते हो। हम लोग छह बजे सुबह रवाना होंगे। तब तक तैयार हो सकोगे?"

अगली सुबह छह बजने से पहले ही मैं पूरी तरह तैयार हूं।

शिकागो!

उसे 'पामर हाउस' में उतारकर प्रोफ़ेसर मुझे वाई० एम० सी० ए० ले जाते हैं। सोलहवीं मंज़िल पर कमरा मिलता है। उन्हें धन्यवाद देकर मैं लिफ्ट लेकर ऊपर जाता हूं। कमरा अच्छा है, साफ़-सुथरा। अपना बैग मेज़ पर रखकर मैं खिड़की से बाहर देखता हूं, ठीक सामने कोकाकोला का बड़ा-सा बोर्ड है, उसके नीचे घड़ी समय बता रही है। सारे दिन मैं अकेला ही इधर-उधर भटकता रहता हूं। न जाने क्यों उसके सामने नहीं पड़ना चाहता। कोलाहल-भरी महा-नगरी में मुझे अपने नितान्त अकेलेपन का बोध है। काफ़ी देर म्यूज़ियम में बिताता हूं, भूख लगने पर एक सैण्डविच खा लेता हूं। कभी-कभी मन में जिज्ञासा उठती है कि क्या वह मुझे लेकर परेशान हो रही होगी। वह मेरे साथ-साथ घूमना चाहती थी। सन्ध्या को जब लौटता हूं तो न चाहते हुए भी एक बार पूछ लेता हूं कि मेरे लिए कोई सन्देश तो नहीं। यह जानकर कि कोई सन्देश नहीं, मन एक नामहीन उदासी से बोझिल हो उठता है। सन्ध्या वाई० एम० सी० ए० के थियेटर में डैनी के की एक पुरानी फ़िल्म देखकर बिताता हूं। और सोचता हूं कि अगले वर्ष यदि छात्रवृत्ति में वृद्धि हो गई तो शशिबाला को बुला लूंगा।

अगली सुबह टेलीफ़ोन की घण्टी से नींद टूटती है। उसे दो-तीन बार बजने देता हूं, फिर उठाकर बड़े इत्मीनान से उत्तर देता हूं।

टीटी ही है। पिछले दिन गुम रहने के बारे में कोई बात वह नहीं कहती, दस बजे 'पामर हाउस' के लाउन्ज में मिलने को कहती है। उसका स्वर यह जता देता है कि यह प्रार्थना नहीं, आज्ञा है।

मैं दस बजे 'पामर हाउस' के लाउन्ज में हूं। थोड़ी-सी

करता-सा, भूरे रंग के अपने ढीले ऊनी सूट में, यह जानता हुआ कि भारत में सिलाया हुआ यह सूट यहां की सुसंस्कृत भीड़ में कैसा असंगत लग रहा है।

पहले प्रोफेसर दिखाई देते हैं, बाद में वह। पास आने पर देखता हूं कि वह और दिनों की अपेक्षा अधिक बनी-संवरी लग रही है। उसने ग्रे रंग की साड़ी पहन रखी है, ऊपर कोट, कोट में फर कॉलर है।

प्रोफेसर अभिवादन का उत्तर हंसकर देते हैं।

"कहां-कहां का प्रोग्राम है?" वह पूछते हैं। मेरे कुछ कहने से पहले ही वह बोल पड़ती है: "पहले हम 'म्यूज़ियम ऑफ माडर्न आर्ट' जाएंगे, फिर थोड़ी-सी शापिंग करनी है।"

"अच्छा; अच्छा।" कहकर वह टीटी की पीठ थपथपा देते हैं! जाते-जाते मुड़कर देखता हूं तो पाता हूं कि प्रोफेसर उसी जगह खड़े हम दोनों को ताक रहे हैं! मैं आधुनिक चित्रकला के बारे में कुछ भी नहीं जानता; चुपचाप कैटेलोग हाथ में लिए उसके पीछे-पीछे एक कमरे से दूसरे कमरे में घूमता हूं। टीटी प्रसन्न है, उसकी आंखें चमक रही हैं, यह स्पष्ट देख रहा हूं।

"तुम ऊब गए होगे।" वह लंच की मेज़ पर कहती है।

"नहीं। सब कुछ मेरे लिए बहुत शिक्षाप्रद है।" मैं कहता हूं।

इस समय भी मैं टमाटर और पनीर का सैण्डविच खा रहा हूं, और देख रहा हूं कि कभी-कभी बाल हिलने से टीटी के कानों के कर्णफूल झलक जाते हैं।

"क्या यह सिल्क है?" मैं पूछता हूं।

उसके हाथ साड़ी की सलवटें ठीक करते हुए ठहर जाते हैं। साड़ी में एक भी सलवट नहीं है, पर जब उसके हाथ चंचल हो उठते हैं तो अदृश्य सलवटें मिटाने लगते हैं।

"हां, रा सिल्क। तुम्हें मालूम नहीं क्या?"

"नहीं। स्त्रियों और उनके बारे में कम ही जानता हूं।"

"सचमुच?" वह मुझपर हंस रही है, मैं यह समझ रहा हूं।

"मुझपर हंस रही हो?"

"नहीं, नहीं। क्या तुम बुरा मान गए?"

लंच की मेज़ पर एक फूलदान है, जिसमें एक लम्बी-सी टहनी में लाल गुलाब है। फूल लगता असली है पर उसमें गन्ध नहीं। वह प्लास्टिक का है।

"तुम्हें उस रात की याद है, जब तुमने मेज के बारे में पूछा था। वह पेड़ की शाखाएं नहीं हैं। मैंने आधुनिक शिल्प नाम का कोर्स लिया था, उसमें मैंने वह बनाया था, वह काष्ठ का है, अपनी उस कलाकृति को मैंने नाम दिया था—"मातृत्व।"

मैं टीटी की आंखें बचा रहा हूं, उसकी ओर देखना नहीं चाहता, वह आगे झुक आई है, और उसके दर्प-भरे चेहरे पर ऐसा भाव मैंने कम देखा है, जैसे मैं चोट खाया बालक हूं जिसे वह लोलीपोप देकर बहलाना चाहती है।

"भास्कर, मेरे बारे में लोगों ने तुमसे काफी-कुछ कहा होगा ?"

"नहीं," मैं सिर हिलाते हुए कहता हूं।

"कुछ नहीं ? मेरे और प्रोफेसर के बारे में, औरों के बारे में···"

"नहीं तन्वी," मुझे उसे टीटी कहकर पुकारने में झिझक-सी होती है, "मुझसे किसीने कुछ नहीं कहा।"

एक वेट्रेस आकर हमारे कॉफी के प्यालों में ताजी कॉफी डाल गई।

"तुम्हारे मुंह से अपना नाम सुनकर न जाने कैसा लगता है!" उसने प्लास्टिक के गुलाब को फूलदान से निकाल लिया और उंगलियों पर गोल-गोल घुमाने लगी। "प्रोफेसर मेरे अध्यापक थे।" उसने कहा : "पहले वर्ष जब मैं यहां आई थी तो प्रोफेसर की ही छात्रा थी। प्रोफेसर ने ही हंसी-हंसी में मेरा नया नामकरण कर दिया था। अब तो यह, टीटी, मुझसे ऐसा जुड़ गया है कि बहुत-से लोगों को मेरा असली नाम याद ही नहीं रहता।"

"··········"

"भास्कर!"

"हूं।"

"तुम्हें यहां कैसा लगता है ? मित्र बने हैं ? कभी किसी लड़की को 'डेट' करते हो ?"

इतने-सारे प्रश्नों का इकट्ठा उत्तर नहीं दिया जा सकता। किसका उत्तर पहले दूं, यह सोच रहा हूं।

वेट्रेस आकर बिल मुझे दे गई है। मैं ही चुकाता हूं, टीटी आग्रह नहीं करती। मिशिगन ऐवेन्यू पर आकर हम पाते हैं कि धूप हलकी पड़ गई है, स्वच्छ है और दूर बायीं ओर जल झिलमिला रहा है। हम दोनों, वि

उसी ओर चल पड़े हैं।

दूर-दूर तक रेत बिखरी है, वालुकाकण धूप में चमक रहे हैं। टीटी वहां बैठना चाहती है, मैं अपना रूमाल निकालूं इससे पहले ही वह अपना कोट नीचे डालकर उसपर बैठ जाती है। थोड़ी दूर हटकर कुछ बच्चे खेल रहे हैं और उनकी माताएं आपस में बातें कर रही हैं। बच्चे दौड़ते हुए बिलकुल पास आ जाते हैं, और फिर, खेल में ही मग्न वापस भाग जाते हैं, लाल रंग की कमीज़ पहने हुए केवल एक बच्चा कौतूहल से टीटी को देखता खड़ा रह जाता है।

वह हाथ बढ़ाकर उसे बुला रही है, पर वह हंसकर अन्य साथियों के पास भाग जाता है, टीटी का हाथ कुछ देर तक वैसे ही फैला रहता है, आह्वान की मुद्रा में। फिर वह लेट जाती है और आकाश की ओर ताकने लगती है। लेटे-लेटे वह न जाने कितनी बातें करती है, ज्यादातर अपने बचपन की, अपने पिता की, गर्मियों में पहाड़ जाने की स्मृतियां, प्रोफेसर के साथ विविध यात्राएं, और कभी-कभी पेट के बल होकर, कुहनियों पर भार देकर बालों को धीरे-धीरे झुलाती हुई वह बोलती है, कभी दाहिनी करवट लेती है, कभी बायीं, और मैं पास बैठा सब कुछ चुपचाप सुनता हूं, उसके चेहरे पर दौड़ते विविध भावों को नोट करता हूं और देखता हूं उसकी बेचैनी, लेक मिशिगन की वेगवती लहरों की तरह।

फिर वह चुप हो जाती है। देर तक कुछ नहीं कहती। मैं बैठा-बैठा थक गया हूं; पर वापस चलने को नहीं कहना चाहता, क्योंकि मेरे तन्द्रिल मन पर एक असीम सुख का जाल-सा छाता जा रहा है। वहीं बैठे-बैठे मैंने सूर्यास्त देखा था और फिर पूर्व में चन्द्रोदय। रेत धीरे-धीरे ओस में ठण्डी होने लगी थी, और आकाश चमकते तारों से भर उठा था। पीछे मुड़कर देखने पर शिकागो नगर की सारी इमारतें सहस्रों चमकती बत्तियों से दिप उठी थीं।

अचानक ही उसने कहा : "कब से मूर्ति की तरह बैठे हो, थक नहीं गए होगे?" शायद हाथ बढ़ाकर मेरी बांह को अपनी ओर खींचने में उसे अधिक प्रयत्न न करना पड़ा होगा।

अगली सुबह, कान्फरेंस की समाप्ति पर जब प्रोफेसर मुझे वापस ले चलने के लिए आए, तो मैं बिना किसी झिझक व अपराध-भावना के उनके सामने हो सका, अपने उस व्यवहार पर मुझे स्वयं ही आश्चर्य हुआ! वह बीच की सीट पर बैठी रही सुस्थ, संयत। ओठों पर हल्की-सी मुस्कान। प्रोफेसर लौटते समय चुप रहे,

और टीटी के निकट बैठा हुआ मैं, सामने सड़क पर दृष्टि गड़ाए हुए भी उसकी उपस्थिति से पूरा सजग रहा। मेरी जीभ की नोक पर उसकी त्वचा का खारापन था, और मुझे लगातार लग रहा था कि उसके बाल मेरे मुख पर छाए हुए हैं। सुगन्धित, तेलहीन रेशमी बाल।

मुझे घर के आगे उतारकर, मेरे धन्यवाद को प्रोफेसर ने हंसकर ग्रहण किया। उसने चलाते समय एक बार मुझे देखा। लम्बी, भरपूर दृष्टि। वे दोनों चले गए।

दो दिन की निरन्तर वर्षा में पतझर के इन्द्रधनुषी रंग घुल गए हैं। धीरे-धीरे स्याह बादल हटते नहीं, धुंधली-सी पानी की दीवार ने झील के नीलेपन को ढंक लिया है, सड़क पर चलने से भीगी पत्तियां पैरों के नीचे आती हैं, और पेड़ों की नग्न, कुरूप शाखाओं के बीच गुजरती हुई हवा धीरे-धीरे कराहती है।

कैम्पस के चारों ओर भीड़ कभी कम नहीं होती। रंगीन छाते, रंगीन स्कार्फ, रंगीन स्कर्ट···मैं इन सबके बीच एकदम अकेला हो आया हूं। समय धीरे-धीरे एक अनजान प्रतीक्षा में रेंगता है।

दो दिनों के बाद एकाएक सोचता हूं कि इसकी क्या गारण्टी है कि वह दुबारा मुझसे मिलना चाहेगी। वह आवेग क्षणिक भी तो हो सकता है। तब अपनी सारी असमर्थताएं मन में सालने लगती हैं। वर्षा के धुंधलेपन में कमरा और भी 'बौना' लगता है। मैं सोफे पर लेट जाता हूं, और विविध स्वरों को सुनता रहता हूं, मेरे संकोचशील, दब्बू मस्तिष्क में अनेक अजीब-असम्भव प्लान बनते हैं, और मिट जाते हैं।

अगले दिन वर्षा थम गई है और फीकी-फीकी धूप शहर पर छा गई है। मेरा आज कोई क्लास नहीं है, सारे दिन घर में रहकर पढ़ने का इरादा है। साथ ही, फोन बजने की प्रतीक्षा भी। ग्यारह बजे तक मकान में सन्नाटा हो जाता है। पुरुष काम पर चले जाते हैं, कैप्टेन अहमद की पत्नी मिसेज नायक बच्चों को लेकर बाजार। मैंने आलमारी से पुस्तकें निकालकर मेज पर रख दी है। बाहर घण्टी बजती है। उठकर द्वार खोलने जाते हुए मैं जान लेता हूं कि वही होगी।

वह घण्टी बजाकर कार में जा बैठी है, और व्हील पर बांह टिकाए प्रतीक्षा कर रही है। मैं बिना कोई प्रश्न पूछे पास जाकर खड़ा हो जाता हूं, वह झुककर उस ओर का दरवाजा खोल देती है।

उसमें कोई अन्तर नहीं दीखता, उसका मुख शान्त और निरुद्वेग है, बाल न्धे तक, बायें कन्धे पर साड़ी, उसी रंग का स्वेटर।

"प्रोफेसर को शिकागो से आकर ज्वर हो गया था।" वह कहती है।

"अब कैसे हैं ?"

"ठीक हैं। आज कालेज गए हैं।"

मैं उससे पूछना चाहता हूं कि हम कहां चल रहे हैं, क्योंकि मैं उसका नैकट्य पाने को आकुल होता हुआ भी, उसके घर जाने को प्रस्तुत नहीं हूं।

वह चुप है। मोटर, मकान, सड़कें दुकानें पीछे छोड़ती हुई चली जा रही है। कुछ देर में हम शहर के बाहर आ गए हैं। अब सड़क के दोनों ओर टीले हैं, और हरियाली है। एक लाल छत वाले फार्म के सामने वह कार रोक देती है।

"आओ।" वह उतरते हुए कहती है।

"यह किसका फार्म है?" मैं पूछता हूं। एकाएक इतनी ठण्ड हो गई है; इसका अनुमान बाहर आने पर ही होता है।

"घबरा गए हो क्या ?"

"नहीं, घबराऊंगा क्यों ?" कहते हुए मेरे अन्दर अपने पर एक नय विश्वास और अदम्य साहस भर उठता है। वह दरवाजा खोलती है; हम लो किचेन में हैं, बड़ी-बड़ी खिड़कियों पर लाल चेक के पर्दे हैं, वैसा ही मेजपोश भी स्टोव के ऊपर, दीवार पर चमकते, स्वच्छ तांबे के बर्तन टंगे हुए हैं। टी नल खोलकर केतली में पानी भरते हुए कहती है: यह फार्म इलेन का है। इ मेरी नीग्रो नौकरानी है। सप्ताह में एक बार आकर पूरे घर की सफाई करती आज वह वहां गई हुई है।

स्टोव जलाकर टीटी कुर्सी पर आकर बैठ गई। उसने दोनों हाथ लाल पोश के ऊपर रख लिए हैं।

"इलेन बहुत भली है। वह मेरी नौकरानी नहीं, मित्र है। मुझे कभ आश्चर्य होता है कि इस शहर में केवल इलेन ही मेरे इतने निकट है। इ समझती है।"

थोड़ी देर में पानी उबलने लगता है। टीटी दो प्यालों में कॉफी उसने मेरा प्याला भी मेज़ पर रख दिया है। हम दोनों चुपचाप अप कॉफी पीते हैं। टीटी, जैसा कि प्रायः उसके साथ होता है, फिर अपने

है और झुकी हुई उसकी पलकें देखकर मेरा मन उसके मौन को भंग करने को नहीं होता।

बाहर हलकी-हलकी धूप बिखरी है। पास ही कभी-कभी कोई गाय रंभा उठती है, उसके अतिरिक्त सन्नाटा है। स्टोव के पास बिजली की घड़ी, बिना आवाज किए, समय बता रही है। मेरे हाथ से चम्मच छूटकर नीचे जा गिरता है, और हम दोनों एकसाथ उठाने नीचे झुकते हैं, और एक-दूसरे से आंखें मिलते ही, चम्मच बिना उठाए सीधे हो जाते हैं। कॉफी का प्याला छोड़, वह उठ खड़ी हुई है और रसोई के द्वार पर जाकर ठिठक गई है। फिर वह ग्रीवा मोड़कर मुझे देखती है।

मैं अपनी कुर्सी पीछे खिसकाकर खड़ा हो जाता हूं।

और तब, उस दिन के बाद, मेरे दिन शुक्रवार की प्रतीक्षा में कटते हैं, जोकि इलेन की सफाई करने का दिन है, जबकि वह सारे दिन घर से बाहर रहती है, और जिस दिन मेरा एक भी क्लास नहीं होता। एक शुक्रवार से दूसरे शुक्र तक का अन्तराल मैं विचित्र उत्कण्ठा से काटता हूं, स्वप्नलीन व्यक्ति की तरह क्रिया-आलाप में मग्न। तब बागची के प्रश्नों का उत्तर भी देता हूं, क्लास में जाता हूं, और यह सब करते हुए मेरे असीम सुख की, गहन तुष्टि की मन्द-मन्द आंच जलती रहती है, और उसीसे लिपटी एक अननुभूत खालीपन, शून्यता की भावना भी। ऐसा सब, सीधी लीक पर चलती हुई जिन्दगी में मैंने कभी अनुभव नहीं किया था। मेरा जो दिन खाली था, वही दिन इलेन का सफाई करने का भी था, इस बात के संयोग का जब मैंने टीटी से उल्लेख किया तो वह हंस दी।

"पहले इलेन मंगलवार को आती थी।" उसने कहा: "पर तुम उस दिन बिज़ी होते हो, इसलिए मैंने इलेन का दिन बदल दिया।"

"उसने आपत्ति नहीं की?"

"वह आपत्ति क्या करेगी? वह जानती है।"

"क्या वह हमारे बारे में जानती है?" मेरे स्वर में अचम्भा था।

"वह तुम्हें नहीं जानती। पर मेरी कोई बात उससे छिपी नहीं है। उसने मेरे चेहरे के भाव पढ़ लिए होंगे।"

"क्या तुम मुझे लेकर लज्जित हो, भास्कर?" वह पूछती है।

मैं सहसा उत्तर नहीं दे पाता। उस छोटे-से चौकोर कमरे की

हर अपराह्न की धूप चमक रही है; पर मोटे पर्दों के कारण कमरे में अंधरा-
है, पर ऐसा गहरा अंधेरा नहीं जिसमें कि हम दोनों एक-दूसरे को न देख सकें।
शय्या पर पीठ के बल लेटी है, बहुत हलके गुलाबी रंग की चादर से वह अपने
ढके हुए है, ग्रीवा तक। तकिये पर उसके बाल बिखर गए हैं, उसकी आंखें अब
न्त, तोषपूर्ण नहीं दीखतीं, वे एकाएक बेचैन हो आई हैं!

वह धीरे-धीरे मेरी बांह छूती है।

"नहीं तन्वी, मैं लज्जित नहीं हूं। पर कभी-कभी व्याकुल अवश्य हो उठता
हूं। तुम्हें प्रोफेसर की तरह सुख-सुविधा नहीं दे पाऊंगा।"

वह मेरी बांह पर से अपना हाथ हटा लेती है। मेरे पास यह जानने का कोई
साधन नहीं है कि वह क्या सोच रही है। कुछ सोच भी रही है? कुछ देर बाद
वह कहती है: "अब हमें वापस चलना चाहिए।"

मैं जान रहा हूं कि एक लघु पल में ही वह मुझसे दूर चली गई है, जहां मैं
उसे छू भी नहीं सकता, पकड़ नहीं पाता। और मैं उदासहो आया-हूं। उसकी साड़ी
अब तक नीचे फर्श पर पड़ी हुई थी, बैंगनी रेशम के एक ढेर की तरह। वह मेरी
ओर पीठ कर वस्त्र बदल रही है, मैं जानता हूं कि वह अब स्नानागार में जाकर
बाल संवारेगी, ओठों पर मोतिया रंग की लिपस्टिक लगाएगी। उसका प्रसाधन-
हीन-सा चेहरा, कुशलतापूर्वक किए गए प्रसाधनों के कारण है, यह जानकर मुझे
अपने ऊपर हंसी भी आई थी, और अचम्भा भी हुआ था।

जब तक वह स्नानागार में रहती है, मैं बिस्तर ठीक कर देता हूं। मैं नहीं
चाहता कि इलेन आकर हमारी उपस्थिति का कोई चिह्न पाए। पर मैं जानता हू
कि इलेन जानती है, तभी तो हर बार बिस्तर पर धुली और लैवेण्डर की गन्ध स
सुवासित चादरें होती हैं, स्नानागार में साफ तौलिये।

लौटते हुए हम दोनों ही चुप रहते हैं। वह मुझे घर तक नहीं लाती, ज़्याद
तर बस स्टैण्ड पर छोड़ देती है।

इस बीच मौसम बदल गया है और घरों की छतों पर, वृक्षों की टहनियों प
सड़कों और पेवमेण्टों पर बर्फ जमी हुई दिखाई देती है। मैं भारी कपड़ों से ल
हुआ हूं। बस अभी नहीं आई है; क्योंकि कुछ लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं।

"शायद मैं अगले सप्ताह कहीं चली जाऊं।" वह जाने से पहले कहती है
मैं उसकी ओर देखता रह जाता हूं। आज बेहद ठण्ड है, दूर फैक्टरी

तीन चिमनियों से नीला धुआं निकल रहा है और वह ऊपर नहीं उठता, चिमनियों के आसपास ही मंडरा रहा है। सड़क की बत्तियां धुंधली-सी लगती हैं, और जैसे दिन के तीन बजे ही रात-सी हो आई है।

दूर बस आती हुई दिखाई देती है।

वह चली गई है। उसकी नीची-सी कार को एक बड़ी-सी ट्रक ढक लेती है, और मैं उसे नहीं देख पाता।

दो-तीन दिन बाद प्रोफेसर से बुक स्टोर में भेंट होती है। वह मुस्कराते हैं और उनके आग्रह पर मैं कैफेटेरिया में जाकर एक कप कॉफी पीने का निमंत्रण स्वीकार कर लेता हूं।

अपना ओवरकोट उतारते हुए मैं सोचता हूं कि यदि प्रोफेसर हमारी आत्मीयता की बात जान जाएं तो उनके इस शिष्ट, सधे चेहरे पर क्या भाव आएंगे। चाहते हुए भी प्रोफेसर के प्रति मैं अनुदार नहीं हो पाता, उनकी विद्वत्ता का मैं आदर करता हूं, उनकी आयु तक पहुंचकर भी मैं उनकी तरह प्रतिष्ठित नहीं हो पाऊंगा, इसका बोध मुझे है। मैं अत्यन्त साधारण हूं, देखने-सुनने, पढ़ने-लिखने, हरेक बात में। पर इस समय मैं उनके प्रति बहुत सम-भाव अनुभव कर रहा हूं। उसके कारण।

और जैसे मेरे विचारों के उत्तर में उन्होंने पूछ लिया कि इधर मैं टीटी से मिला हूं या नहीं।

झूठ बोलना मुझे अच्छा नहीं लगता। फिर भी कहना पड़ता है कि कुछ दिन पहले, बहुत थोड़ी देर को उससे भेंट हुई थी। और, कहते ही मेरे सारे शरीर में उसके अंगों का स्पर्श व्याप जाता है, और मेरी दाहिनी बांह पर रोएं मरमरा उठते हैं।

"मैं उसे लेकर आजकल बहुत चिंतित हूं।" वह एकटक मुझे देख रहे हैं, "उसका आचरण बहुत अस्वाभाविक होता जा रहा है। लम्बी चुप्पियां, उदासी के लम्बे-लम्बे दौर। उसे अपने को व्यस्त रखना चाहिए, पर उसका हर चीज़ से मन ऊब-सा गया है।"

मैं थोड़ा-सा 'अनईज़ी' हो गया हूं। प्रोफेसर मुझसे यह सब क्यों कह रहे हैं? पर मैं सुनता रहता हूं। कैफेटेरिया के बाहर नीली झील सफेद बर्फ से ढकी हुई है, उसके ऊपर धुंध-सी छाई रहती है, उसपर की कोई चीज़ नहीं दीखती।

"भास्कर, तुमने टीटी में कोई परिवर्तन नहीं देखा ?"

"उन्हें निकट से जानने का मुझे अवसर नहीं मिला।" मैं कहता हूं, और वता हूं कि वह सचमुच मेरे लिए अपरिचिता है, मैं उसके बारे में अवश्य जानता पर वह क्या सोचती है, सप्ताह के अन्य दिनों में कहां जाती है, क्या करती है, सका मुझे कोई ज्ञान नहीं है।

"जाड़ों में वह हमेशा डिप्रेस्ड रहने लगती है। उसके डाक्टर का कहना है क उसे कहीं गर्म, धूप वाले प्रदेश में चला जाना चाहिए। जैसे फ्लोरिडा।"

"क्या वह जाएंगी ?"

"बहुत सम्भव है इसी सप्ताह।"

उसके बाद मैं कुछ नहीं कहता। प्रोफेसर के मुख की ओर भी नहीं देख पाता। मुझे भय है कि मैंने असावधानी से उनके ऊपर यह प्रकट हो जाने दिया है कि उसके कहीं चले जाने की सम्भावना से मैं थोड़ा-सा घबरा गया हूं।

जाने से पहले केवल एक बार भेंट होती है। बहुत थोड़ी देर को। अपने घर के आगे एक पुरानी-सी मोटर से एक नीग्रो औरत को उतरते देख जान लेता हूं, कि यही इलेन होगी। वह मुझे साथ ले जाने को आई है। हम उसके घर नहीं जाते, दिन में मूर्ति-दम्पती का घर भिन्न-सा लगता है। वह गलियारे में खड़ी है, हमें देखते ही कहती है, "इलेन, बड़ी देर लगा दी !"

"मुझे दुःख है मिसेज़ मूर्ति।" इलेन कहती हुई अन्दर चली जाती है।

"भास्कर," वह मेरे निकट आ जाती है। वह हलके पीले रंग की रोब पह[ने] है जो भूमि तक आती है, पारदर्शी नायलोन की, पर इतनी परतें कि कोई अं[ग] नहीं दीखता।

वह उद्विग्न-सी है, वह मुझे अपने कमरे में ले आती है। और पलंग के पा[स] ताने रक्खी कुर्सी की ओर बैठने का संकेत करती है। पलंग काफी बड़ा है, उस[पर] सफेद और सुनहरे रंग का पलंगपोश विछा है, ऊपर झालरदार चंदोवा है। नी[चे] फर्श पर दो सूटकेस खुले पड़े हैं।

"मुझे रात तक पैकिंग कर लेनी है।"

मैं चुप हूं और उसके कमरे को देख रहा हूं, जिसकी साज-सज्जा सचमुच

युक्त है, जिसकी अव्यवस्था में भी टीटी सजती है। मेरे मन में रह-रहकर का वह छोटा-सा अतिथि-रूम उभर आता है, जहां मैंने सम्पूर्णता से टीटी को था। पर जहां हर चीज पुरानी, कम दाम की थी और जहां से हर बार र आने पर मेरे मुह का स्वाद कुछ कड़वा-सा हो आता था क्योंकि उन कुछ मीय घंटों में भी मेरे मन में अपनी असमर्थता का भाव चिपटा रहता था। मेरा अपना, अलग छोटा-सा भी फ्लैट होता तो उसकी नौकरानी के घर में लने की आवश्यकता न पड़ती। टीटी का कमरा, उसके कपड़े, उसकी चीजें, सबके बीच मैं नितांत अकेला बैठा था, और थोड़ा-सा आहत भी, यदि वह हती तो जाने को मना कर सकती थी। वह इतनी स्वतंत्र है, शायद वह स्वयं ाना चाहती हो।

अपने को आश्वस्त करने के लिए कहता हूं, "निश्चय ही यह अंत नहीं है, कुछ सप्ताहों के तुम्हारे चले जाने से कुछ नहीं बदलता।"

"मैं अभी तैयार हुई जाती हूं, तुम यहीं ठहरो।" वह पलंग पर से कुछ कपड़े उठा लेती है और कमरे से संलग्न एक द्वार खोलकर अन्दर चली गई है। जब वह बाहर आती है तो बहुत-कुछ पहले-जैसी लगती है, प्रकृतिस्थ संयत। एक छोटी-सी मुस्कान में मुझे सम्मिलित करते हुए वह इलेन को पुकारती है।

"हम लोग कुछ देर को जा रहे हैं। क्या तुम ये कपड़े पैक कर दोगी?"

इलेन यह सुनकर चौंक-सी गई। मेरी ओर देखते हुए वह स्वीकृति में सर हिलाती है।

"क्या हम इलेन के घर जा रहे हैं?" मैं पूछता हूं।

"नहीं बेबी, उतना समय नहीं है।" वह कहती है।

"फिर?"

"तुम बहुत निरर्थक सवाल पूछते हो।" उसने अपनी तर्जनी मेरे ओठों पर रख दी है।

यात्रा लम्बी है, कुछ देर में मैं समझ जाता हूं कि हम झील के उस पार जा रहे हैं। मैं बहुत कुछ कहना चाहता [illegible] और हर क्षण के बाद मेरी आकुलता बढ़ती जा रही है।

"क्या तुम्हारा जाना आवश्यक है?"

"डॉक्टर कहते हैं।"

पिघलती हुई बर्फ

"कौन रोया ?"

"कोई नहीं।"

"कोई रोया था।"

"कोई नहीं रोया।"

"वीरू ! वीरू ! वीरू !"

"इस तरह चीखते क्यों हो ? वीरू अब कहां ?"

"वीरू कहां है ?"

"वीरू तो मर चुका।"

"वीरू ?"

"वीरू नहीं है। वीरू तीन साल पहले मर चुका।"

"मर गया ?"

"हां—याद नहीं है, वह आंधी-पानी वाली रात, बर्फ पर रक्त के दाग, लाल कीचड़।"

"और सुधीरा ? कहां हो सुधीरा ? सामने आओ, तुम्हें एक बार देखना चाहता हूं सुधीरा।"

अक्षय ने चौंककर आंखें खोलीं। कुछ देर निश्चल लेटा रहा, कैसा विचित्र स्वप्न था। कमरे में अभी भी जैसे सुधीरा की आवाज़ घूम रही थी। पर यह बदरंगे वॉलपेपर वाला कमरा नहीं है, बाहर थर्ड स्ट्रीट की ट्रैफिक भी नहीं, घर शुक्लाजी का है, बरामदे के उस पार शुक्लाजी का शयन-कक्ष है, उनकी पत्नी, और गुड्डी। नहीं, यह थर्ड स्ट्रीट पर अक्षय का पुराना कमरा नहीं है। खिड़की खोलने पर कोने पर अभी-अभी मुड़ती सुधीरा नहीं दिखाई देगी। फिर दरवाज़ा नहीं खुलेगा और हंसती, उल्लसित सुधीरा आकर खड़ी नहीं होगी। कभी नहीं। अब कभी, कभी, कभी नहीं। वहां वापस लौटने पर भी नहीं। थर्ड स्ट्रीट के कमरे में

खिड़की खोलकर खड़े रहने पर भी नहीं। पूरी जिन्दगी खड़े रहने पर भी नहीं। पागलों की तरह सुधीरा का नाम पुकारते हुए सड़क पर भागने पर भी नहीं। कभी नहीं। अब कभी नहीं।

अब सुबह होने वाली है। अक्षय उठकर चारपाई पर बैठ गया है। रात के प्रथम पहर में देखा गया स्वप्न अब धूमिल पड़ गया है। सिर में थोड़ा-थोड़ा दर्द है। हाथों से माथा थामकर अक्षय याद करने की चेष्टा करता है। सुधीरा कमरे में आई थी, कुछ कह रही थी, शायद बीरू के बारे में। बीरू अब कहां ? बीरू तो तीन साल हुए मर चुका।

अक्षय बहुत देर, उसी तरह, हाथों में माथा थामे बैठा रहा। बाईं कनपटी पर एक नस दुखती रही। यह बोझ, यह थकान, अब और नहीं, और नहीं। सुधीरा, क्या अन्त में तुम ही जीतोगी ? क्या बीरू के बदले मुझे लेकर ही तुम्हारी आवाज चुप होगी ? अक्षय ने बड़ी चेष्टा से अपने को इन विचारों से अलग किया। उसने चप्पलों में पैर डाले और उन्हें अनिच्छा से घसीटता हुआ उठा और कॉफी परकोलेटर का प्लग लगा दिया। पुरानी आदत शीघ्र नहीं छूटती। भाभी, मिसेज़ शुक्ला, कॉफी व पानी रात को ही रख जाती हैं। अक्षय उस छोटी-सी खिड़की के किवाड़ के सहारे खड़ा हो बाहर देखने लगा। रात फिर पानी बरसा था। इस समय हवा ठण्डी है और रात में फूले हुए पुष्पों की सुगन्ध से बोझिल। कुछ देर में पूरी तरह उजाला होगा। एक नया दिन प्रारम्भ होगा। अक्षय तैयार होकर, शान्त, स्वस्थ-चित्त कालेज जाएगा और पूरे दिन अपने को व्यस्त रखेगा। क्लास में पढ़ाएगा, हाज़िरी लेगा, स्टाफ-रूम में लौटकर कॉफी पिएगा। और शायद आज नई रात को अक्षय आत्महत्या कर ले और कल जगह-जगह छोटे-छोटे समूहों में खड़े होकर उसके साथी, विद्यार्थी उसकी मृत्यु पर खेद प्रकट करें। शायद छवि रोए।

कॉफी तैयार है। अक्षय मुड़कर कांच के ढक्कन में कॉफी का रंग देखता है। अभी कुछ और गाढ़ी होने दो। यह सिरदर्द, यह नया दिन, अपने को ढकेल-ढकेलकर काम करवाना और सबके सम्मुख संयत चेहरा प्रस्तुत करने का श्रम !

उजाला होने के साथ ही महरी आती दिखाई देती है। वह अनाहार के कारण सूखी हुई, कड़े हाथों वाली; उसकी कमी हुई साड़ी घुटनों से ऊपर है और उन खुले हुए काले पैरों में कहीं कुछ सेन्सुअस नहीं।

उसके कुण्डी खड़काने से पहले ही दरवाजा खुल जाता है। महरी [illegible]

दूधवाला।

फिर गुड्डी का रोना।

कमरे में ताज़ी कॉफी की महक मंडराती है।

गुलमेहंदी की पंखुड़ियां कीचड़ में गिरी हुई हैं।

लाल कीचड़ ! रक्त के दाग !

स्वप्न में कौन रोया था ?

बस करो सुधीरा, क्या एक पल चैन नहीं लेने दोगी ?

सुबह का नाश्ता। नहाई-धोई भाभी टोस्ट सेंक रही हैं। गुड्डी अपने चम्मच को बार-बार प्लेट पर मार रही है। फिर वह अक्षय से पूछती है: "चाचाजी मेरी तस्वीर लेंगे ?"

"हां गुड्डो, अगर धूप निकलेगी तो लेंगे !"

"कौन सा मेक है कैमरा ?" शुक्लाजी ने पूछा।

"याशिका।"

थोड़ा-सा मुस्कराओ सुधीरा ! अक्षय, तुम कुछ पास आओ। बस, अ ठीक। वीरू तस्वीर खींच रहा है। सुधीरा अक्षय की आंखों में देखकर धीरे-धीं दुष्टतापूर्वक हंसती है। वीरू अब नहीं है। कैमरा वीरू का है।

"चाचाजी, आज धूप निकलेगी ?'

"हां, गुड्डो।"

"मेरी तस्वीर लेंगे ?"

"एक बात कितनी बार पूछोगी गुड्डी ?" भाभी कहती हैं, "चाचाजी तंग नहीं करते रानी।"

गुड्डी की आंखें उजली हैं, उनमें काली पुतलियां हैं, पुतलियों में अक्ष अपना प्रतिबिम्ब देखा। अक्षय उस प्रतिबिम्ब को कुछ देर देखता है।

हत्यारा !

कभी धूप, कभी वर्षा। एक हाथ में छाता और दूसरे में कितायें लिए कीचड़ से बचता हुआ सड़क पर चल रहा है। इस समय भी मस्तिष्क श आंखें दृष्टिहीन। सड़क, धब्बे, कीचड़, मटमैला आकाश, पास से गु

व्यक्तियों के कपड़ों से पसीने की भभक। एक यही ज़िन्दगी, यही ज़िन्दगी, ओंठ भिंचे हुए, मस्तिष्क विचारहीन। एक धब्बा, दुनिया की लम्बी, सपाट सड़क पर केवल एक धब्बा। अक्षय आंखें कई बार झपकाकर देखता है। नहीं अक्षय, यह गलत है। अक्षय ने अपने आपसे बातें करने की आदत सीख ली थी। गलत है, प्रत्येक प्राणी को जीना है, अपने-अन्दर राग, द्वेष दोष, अपराध, इनका बोझ लिए भी जीना है, औरों के आगे मुस्कराना है।

पर यह सांसें लेने का प्रोसेस कितना मुश्किल, कितना दुश्वार। अक्षय ने आसपास सड़क पर आने-जाने वाले व्यक्तियों को देखा। क्या इनमें से कोई, हर समय, उसकी तरह अपने से द्वन्द्व करता रहता है? क्या उसकी तरह कोई विक्षिप्त है, जो कि एक शब्द के पास दूसरा शब्द रखकर, पंक्तियां, पृष्ठ, पोथे न लिख पाने के कारण धीरे-धीरे टूटकर, बिखरता जा रहा है?

धोखेबाज़! कब तक अपने को धोखा दोगे? असली गांठ सुधीरा है। सुधीरा ही है वह बड़ा-सा हिमखण्ड, जो हृदय के स्थान पर आकर जम गया है। सुधीरा है जो हाण्ट करती है, जागते, सोते। सुधीरा—मुझे निष्कृति दो, मुझे और मत टॉर्चर करो।

अक्षय के लेखक प्रोफेसर ने कहा था—'यह मेण्टल ब्लाक गहरे इमोशनल शाक के कारण है। तुम वापस इण्डिया लौट जाओ। वहां जाकर इस क्राइसिस से से मुक्ति पाओगे।'

आषाढ़ की वर्षा में भीगता हुआ अक्षय शुक्लाजी के घर पहुंचा।

"तुम! खबर भी नहीं दी!" शुक्लाजी ने उत्साह-भरी बांहों में उसे भींच लिया और भाभी, हंसती हुई, आंचल सिर पर खींचती बाहर निकल आईं।

"हाय, कितने दुबले हो गए हैं! और लोग तो विदेश से खूब मोटे होके आते हैं! बीमार थे क्या?"

"नहीं भाभी," अक्षय ने कहा। भाभी के उजले माथे पर दमकती लाल बिन्दी, चेहरे पर असीम स्नेह और अश्रुप्रोज्ज्वल आंखें। अक्षय को लगा कि जिस अतीत को पीछे छोड़ आया है, उससे उबरकर, फिर से जी सकेगा। यहां स्नेह और करुणा है, जल-भरे मेघ और सुगंध-बोझिल पवन, अपनी मिट्टी, अपना देश?

शुक्लाजी ने यह नया घर उसकी अनुपस्थिति में बनवा लिया था। मेहमान कमरे में अक्षय का सामान रख लिया गया और गुड्डी सन्दूक खुलने के लालच में

आस-पास चक्कर काटने लगी। अक्षय ने चलते-चलते न्यूयार्क में गुड्डी के लिए एक गुड़िया और भाभी के लिए नायलोन जार्जेट की दो साड़ियां ले ली थीं। अपनी इस व्यावहारिकता पर उसे अब प्रसन्नता हुई।

जब वह नहा-धोकर बाहर आया तब तक भाभी ने तमाम चीजें बना ली थीं।

"सारे पकवान एक ही दिन में खिला देंगी क्या?" उसने पूछा। भाभी मुस्करा दीं।

"भई, तुम भी खूब हो। दो साल से हमें एक चिट्ठी भी नहीं डाली। कुछ पता ही नहीं चला कि तुम कहां हो, क्या कर रहे हो?" शुक्लाजी ने कहा।

"एक जगह टिककर बैठा ही नहीं। इधर से उधर भटकता रहा।"

"तीन साल में तो पी-एच० डी० कर सकते थे।"

"हां, कर तो सकता था पर एकाएक मन उचट गया," अक्षय ने कहा।

भाभी ने कहा: "हम तो सोच रहे थे कि आप वहां से शादी करके लौटेंगे, पर आप तो जैसे अकेले गए थे वैसे ही वापस आ गए। क्या हुआ उस लड़की का? पटी नहीं?"

अक्षय एकाएक कुछ कह न सका। फिर उसने सायास हंसते हुए कहा: "कुछ ऐसा ही समझ लो।" उसे अपने पर आश्चर्य हुआ कि उसने ऐसा एक पल के लिए भी क्यों सोचा कि इंडिया लौटकर सब बदल जाएगा। मुझमें कुछ नहीं बदलेगा। कुछ नहीं। कुछ नहीं। सुधीरा हाण्ट करेगी। आओ सुधीरा, आओ।

फिर अक्षय शुक्लाजी के साथ ही युनिवर्सिटी गया। तीन साल बाद, अचानक, बिना पी-एच० डी० की डिग्री लिए अक्षय के लौटने से सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछेक ने फब्तियां कसीं, कुछ लोगों ने अक्षय के प्रथम उपन्यास पर बधाई दी।

"अब कुछ लिख रहे हो?"

"नहीं।"

"तुम्हारी पुस्तक की तो बहुत प्रशंसा हुई।"

आवाजें, तीन साल पहले यही लोग थे, हंसी-मजाक, सलाह-मशविरे के साथी थे। आज? कोई नहीं। केवल अकेलापन, नितांत अकेलापन। अक्षय परिचित इमारतों के आस-पास चक्कर लगाता है। जामुन के पेड़ की पत्तियों से ढेर सारी

पानी की बूंदें उसके ऊपर आ गिरती हैं—चारों ओर बड़ी-बड़ी घास उगी हुई है। यहां सीधी सपाट धरती है, ऊंची-नीची पहाड़ियों के बीच कैम्पस की इमारतें नहीं, बर्फ नहीं, लेक का किनारा भी नहीं। एक शताब्दी पहले खड़ी की गई इमारतें हैं, रंग-बिरंगी साड़ियों के आंचल, वर्षा में भीग-भीगकर काले पड़कर पेड़ों के तने और हरे बांसों की लचीली फुनगियां। अक्षय घर लौट आता है। गुड्डी अपनी नई गुड़िया से खेल रही है। भाभी रसोई में हैं। अन्दर से उनके बर्तन खटकाने की आवाज़ आती है।

और फिर धीरे-धीरे पूरा दिन बीतता है। संध्या को कुछ और लोग मिलने आते हैं, फिर वर्षा की रात का अंधियारा, फिर रात मेंढकों का सम्मिलित स्वर, कभी-कभी बादल गरजते हैं। कमरे की दीवारें सफेद, सूनी हैं। अक्षय चारपाई पर लेटकर नींद आने की प्रतीक्षा करता है। हर पन्द्रह मिनट पर घड़ी बजती है, पर नींद नहीं आती।

सुबह कॉफी, गुड्डी की लगातार बातें, फिर क्लास में जाने की तैयारी। क्लास में लेक्चर देते हुए अक्षय एक क्षण को रुका। 'इस समय जो पढ़ा रहा हूं, क्या वह अत्यन्त आवश्यक है ? यदि मैं किताब बन्द कर दूं, तो इन छात्रों के ज्ञान में कुछ कमी होगी ?' पर वह रुका नहीं, पढ़ाता रहा। क्लास के बाद लाइब्रेरी में चला गया,, एक पुरानी अमरीकी पत्रिका निकालकर अपनी पुस्तक का रिव्यू पढ़ा। केवल एक पुस्तक, केवल एक प्यार—और उसके बाद कुछ नहीं। अब कभी कुछ नहीं। न प्यार, न पुस्तक। ब्रिलिएण्ट छात्र, न अध्यापक। एक धब्बा। लाल कीचड़।

दूसरा क्लास प्रारम्भ होने में आधे घण्टे की देर थी। अक्षय स्टाफ रूम में लौट आया। बातचीत के दायरे से अलग, शुक्लाजी के पास बैठी एक युवती को देखकर हल्का-सा चौंका और फिर उसने छवि को पहचान लिया।

"इन्हें जानते हो अक्षय ?" शुक्लाजी ने पूछा।

"हां—कुछ साल पहले पढ़ा भी चुका हूं।" अक्षय ने कहा और पाया कि अपने पहचाने जाने पर छवि थोड़ा-सा विस्मित हुई। उन शर्मीली आंखोंवाली छात्रा और इस पूर्ण युवती में बहुत अन्तर आ गया है। सुन्दर वह तब भी नहीं थी, अब लम्बे-पतले चेहरे पर गाम्भीर्य की छाप है, अपने-आपको स्वीकार कर लेने की शान्ति और सहजता। अक्षय को छवि से ईर्ष्या हुई।

उसने छवि को और निकट से देखा। नहीं, छवि सुन्दर नहीं। उसमें न वाचालता है, न किसी प्रकार की रेस्टलेसनेस। काले पाड़ की सफेद साड़ी पहने है, सादे बाल हैं, पीछे जूड़ा, कोई प्रसाधन नहीं। उसे एकटक देखती है और हाथ में चाय का प्याला थामे है।

लौटते समय शुक्लाजी छवि की बात करते रहे। तब तक अक्षय अनमना हो आया। उसे अब इधर-उधर की चर्चा में रस नहीं आता। छवि है, छवि उपध्याय, बस अक्षय को और नहीं सुनना। छवि है, तो हुआ करे—पेड़ हैं, पत्तियां हैं, आकाश है।

अक्षय ने अपने को समेटकर, सिकोड़कर, जैसे एक दायरे में बन्द कर लिया। शुक्लाजी कहते गए, छवि क्लास में प्रथम आई थी, उसकी नियुक्ति कराने में प्रोफेसर सागर को बड़ा विरोध सहना पड़ा। बड़े-बड़े चर्चे हुए। पर पिछले दो वर्षों से किसीको कुछ कहने का अवसर नहीं मिला। छवि बड़ी इण्टेलिजेण्ट लड़की है। छात्रों में भी उसका बड़ा सम्मान है।

शुक्लाजी के चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान दौड़ गई। उन्होंने कहा : "और भाई, विभाग में कोई लेडी रहे तो अच्छा रहता है। टोनिंग अप हो जाती है। लोग कायदे से रहते हैं और भद्दे हंसी-मजाक नहीं करते। जब से छवि को टी-क्लब का इन्चार्ज बना दिया है, खूब बढ़िया चाय मिलती है। सब लोग ठीक समय पर चन्दा दे देते हैं।"

कितना बोलते हैं शुक्लाजी, अक्षय ने सोचा और उनकी ओर से मुंह फेर लिया।

दीवार पर सीलन का बड़ा-सा धब्बा उभर आया। पानी ने गुलमेहंदी के पेड़ों को बेदर्दी से तोड़ दिया और फूलों की लाल व बैंगनी पंखुड़ियां घास पर बिखर गईं। लगातार पानी की झड़ी ने अक्षय की नब्ज़ को और भी झकझोर दिया था। पिछले कई दिन से लगातार ट्रैंक्विलाइज़र व स्लीपिंग पिल्स ले रहा था। अब पानी कुछ देर को रुका, तो अक्षय बाहर के बरामदे में कुर्सी खींचकर जा बैठा। अन्दर भाभी शायद अंगीठी जला रही थीं। कागज़ जलने की भीगी-सी महक बरामदे में घूमने लगी। पाम के गमलों पर छत से लगातार बूंदें टपक रही थीं। अक्षय आंखें लगाकर पाम की पत्तियों पर बूंदों का गिरकर बिखरना देखने लगा। तभी छवि सामने आकर खड़ी हो गई। उस धुंधली मेघाच्छादित सांझ में उसकी साड़ी का

चटक पीला रंग अक्षय के मन को अनायास ही सुहाना लग उठा। छवि का चेहरा कोमल, उज्ज्वल लग रहा था। इस समय माथे पर कुमकुम की बड़ी-सी बिन्दी थी और पीछे, जूड़े में, कदम्ब का एक फूल। छवि एक पल को ठिठकी, फिर उसे नमस्कार करती हुई अन्दर चली गई। अक्षय के नेत्र फिर इस प्रतीक्षा में छत की ओर उठ गए कि अगली बूंद कब टपकेगी। सामने सड़क धुली-धुली चमक रही थी। कुछ देर में अंधेरा होने पर पानी-भरे गड्ढों में कागज की नावें छोड़कर पड़ोसी बच्चे अपने-अपने घर चले जाएंगे।

अक्षय उठकर नीचे सड़क पर उतर आया। घरों में एक-एक कर बत्तियां जल उठीं। हल्की, मद्धिम बत्तियां। अक्षय ने पैर से क़ागज़ की एक नाव को कुचल दिया और फिर दूसरी नाव को और फिर तीसरी नाव को भी! एक बच्चा जो अभी तक इन नावों को तैरा रहा था, घर जाते-जाते रुक गया और स्थिर खड़ा हो अक्षय को देखने लगा। अक्षय ने हंसना चाहा, पर वह बच्चा मुड़कर चला गया। अक्षय ने एकाएक पाया कि छवि लौटकर सड़क के किनारे-किनारे चली आ रही है, उसने अपनी साड़ी कीचड़ से बचने के लिए आगे से थोड़ी-सी उठा ली है।

'इण्टेलिजेण्ट मिस उपाध्याय'—शुक्लाजी की बात याद कर अक्षय ने कुछ विद्रूप से सोचा—'पूर्ण युवती, पर अकेली मिस उपाध्याय'। ऐसा सोचने पर फिर उसे स्वयं अपने पर ग्लानि हो उठी।

और अब रात है। अक्षय के आगे टाइपराइटर है और उसमें लगा सादा, कोरा पेज। अक्षय कुछ लिखने की चेष्टा कर रहा है। देर तक निश्चल बैठे रहने के बाद उसकी उंगलियां बार-बार टाइपराइटर पर लिखती हैं—सुधीरा, सुधीरा, सुधीरा···।

अक्षय ने एक लम्बी सांस छोड़ी। कुर्सी से पीछे टिककर बैठ गया और उसकी उंगलियों ने आंखों को ढक लिया। अब रात है, कहीं कोई शब्द नहीं, अब वह अपने हृदय की इस गांठ को खोलकर सुधीरा के बारे में सोचेगा।

सबसे पहले सुधीरा की हंसी, फिर उसकी वाचालता, फिर उसकी सहज निश्छलता।

"मुझे कुछ और बताओ अक्षय। मुझे अपने साथ ले चलोगे न? मैं बाबा के घर भी जाऊंगी। मुझे बचपन में ही उन्होंने अपने घर का पता याद करवा दिया था।" सुधीरा तोते की तरह दोहराती है, "रामसेलावन, पोस्ट आफ़िस ···

जिला बस्ती।"

अक्षय हंसता है, "वहां पर अब क्या पाओगी ? तुम्हें कोई जानेगा भ
नहीं।"

"खण्डहर तो होंगे। मैं वहां जाकर अपने बाबा का घर देखूंगी ! उनका बाग-बगीचा और नहर के पास के खेत। मेरा बचपन बाबा से भारत के बारे में तरह-तरह की कहानियां सुनने में बीता।"

सुधीरा के बाबा छोटी उम्र में ट्रिनीडाड में बस गए थे। सुधीरा की मां का नाम था कैलासी, पिता व्यापारी थे। अकेली बेटी को उन्होंने इंगलैण्ड में पढ़ाया था। कई साल बाद लौटने पर सुधीरा ने पाया कि वह, मां कैलासी की भाषा भूल गई है। कैलासी ने हिन्दी छोड़कर कुछ और बोलना नहीं सीखा था।

अक्षय को यह सुनकर अजीब-सा लगा। सुधीरा का चेहरा भारतीय था, रंग-ढंग पाश्चात्य। कटे हुए बाल और नीचे गले की ब्लाउज़, कमर को हल्का-सा झटका देते हुए चलने का अन्दाज़। कभी-कभी वह साड़ी भी पहनती थी, पर साड़ी पहनने पर उसकी अभारतीयता और भी प्रखर हो जाती थी।

अक्षय के साथ भारत जाने के उल्लेख से सुधीरा की आंखें दीप्त हो जाती थीं। "कभी किसी छुट्टी में मेरे साथ ट्रिनीडाड चलना अक्षय—मदर तुमसे मिल कर बड़ी खुश होंगी।"

अक्षय को ट्रिनीडाड जाकर सुधीरा के परिवार से मिलने की जिज्ञासा ब
रही। वह छुट्टी कभी नहीं आई। अक्षय की आंखों के आगे धब्बे तैरने लगते ह
और उन धब्बों में सुधीरा का चेहरा खो जाता है। पर सुधीरा की आंखें उसे
ओर से ताकती हैं। उसका पीछा करती हैं। शून्य, रिक्त आंखें, जिनमें न हंसी
न शिकायत—खुली हुई वे आंखें अक्षय को ऐसे ताकती हैं जैसे उसका चे
अस्पताल की सूनी, सफेद दीवार हो।

मेज पर चाय का एक खाली प्याला, कुछ बिना खुली चिट्ठियां, कुछ प
कुछ फूल। घण्टा समाप्त होने में कुछ ही समय था और अक्षय स्टाफ
अकेला था। उसने दोनों हाथों की उंगलियां एक-दूसरे में फंसा लीं और
आड़ी-चेढ़ी धारियों को देखने लगा। कौरिडोर से कुछ लड़कियां हंसती हुई

गई। अक्षय ने सुबह उठकर टाइपराइटर से कागज निकालकर, मोड़कर, रद्दी की टोकरी में फेंक दिया था। उसपर तीन बार सुधीरा का नाम लिखा था। नहीं सुधीरा, मैं तुम्हें प्यार नहीं करता। नहीं सुधीरा, मैं अब कभी कुछ नहीं लिख पाऊंगा। नहीं सुधीरा, अब मैं वह 'मैं' नहीं हूं। मैं कोई और हूं, जिसे मैं स्वयं स्वीकार नहीं कर पाता।

पर्दा हटाकर छवि अन्दर आई। शायद वह सीधी घर से आ रही थी। तभी उसका प्रसाधनहीन मुख भी बड़ा ताज़ा लग रहा था। वह अक्षय को देखकर थोड़ा-सा झिझकी, फिर पास आकर बैठ गई।

लोगों से घिरे रहने में सुरक्षा की भावना होती है। निरर्थक बातचीत, आपस की आलोचना-प्रत्यालोचना, जैसे पर्तें बनकर विचार और भावनाओं को ढंके रहती है, अक्षय ने सोचा। पर इस समय छवि सामने थी और अक्षय अपने चेहरे पर तुरन्त एक मुस्कराहट का खोल नहीं चढ़ा पाया। छवि उसे कुछ देर तक देखती रही, फिर बोली, "आपको यहां सब कुछ बड़ा अजीब और ढीला-ढाला लग रहा होगा।"

'कुछ विशेष नहीं।" अक्षय ने उत्तर दिया।

"आपको यहां के लोगों के बर्ताव से क्षुब्ध न होना चाहिए। यहां कोई किसीको बढ़ते नहीं देख सकता। सब एक-दूसरे की जड़ काटने में जुटे रहते हैं।"

अक्षय छवि को देखता रह गया। अक्षय को सम्बोधित कर कुछ कहने का यह पहला अवसर था।

यह शायद छवि ने भी महसूस किया। वह चुप हो गई। उस समय छवि के चेहरे पर जो भाव दौड़ गया, उसे देख अक्षय को लगा कि शर्मीली आंखों वाली वह छाया अभी भी खोई नहीं है। छवि कदाचित् अक्षय को एकटक अपनी ओर देखता पा झेंप गई। उस झेंप को मिटाने के लिए वह उठ खड़ी हुई और बाहर बैठे चपरासी को दो प्याले अच्छी चाय बनाकर लाने का आदेश देने लगी।

फिर उसने मुड़कर कहा: "मैं अभी तक आपकी पुस्तक नहीं पढ़ पाई हूं। यहां न बुकस्टोर में है, न लाइब्रेरी में। कुछ और लिख रहे हैं?"

"मेरे अमरीकी लेखक मित्र का कहना है कि हर मनुष्य विदेशी भाषा

...ल लिख सकता है। और लोग उसे उसी कौतूहल से पढ़ते हैं जैसे कि लोग ...कस देखने जाते हैं।"

छवि के चेहरे पर प्रश्न-भरा भाव देखकर अक्षय ने मुस्कराकर आगे जोड़ा : ...लेखक मैं नहीं हूं छवि। वह एक पुस्तक फ्रीक समझ लो।"

"फिर भी मैं पढ़ना चाहूंगी।"

"मेरे पास कुछ प्रतियां पड़ी हैं, उनमें से एक ले लो।" अक्षय ने उठकर अपना लॉकर खोला और एक प्रति निकालकर छवि के आगे मेज़ पर रख दी। छवि ने मुस्कराकर धन्यवाद दिया और पुस्तक उठाकर पहला पृष्ठ खोला। उसकी आंखें कुछ समय एक पंक्ति पर टिकी रहीं। अक्षय जानता था कि छवि उस समर्पण को पढ़ रही है—"सुधीरा को।"

फिर पृष्ठ पलट दिया गया। छवि ने पुस्तक बन्द कर दी और कहा : "इसे यहां पढ़ना नहीं प्रारम्भ करूंगी। घर जाकर चैन से पढ़ूंगी।"

घण्टा कुछ मिनट पहले बज चुका था। कुछ लोग एकसाथ ही अन्दर आए। छवि और अक्षय को पास बैठा देख कुछ मुस्कराये, कुछ चुप रहे। शायद छवि ने यह जाना, वह पुस्तक पकड़े हुए उठ गई।

कुछ दिन बाद अक्षय ने यह नोटिस किया कि छवि अपनी क्लास प्रारम्भ होने से काफी पहले आ जाती है। अक्षय उस समय खाली होता है। छवि आकर दो प्याले चाय बनवाती है और फिर दोनों उस कृत्रिम सन्नाटे में बैठकर चाय पीते हैं। दोनों ही प्रायः चुप रहते हैं। पुस्तक पाने के बाद छवि ने उसका उल्लेख नहीं किया, न अक्षय ने ही उसकी प्रतिक्रिया पूछी। अक्षय ने पाया कि छवि स्वयं जितन... मौन रखती है, उसके नेत्र उतने ही मुखर हैं। अक्षय को लगा कि वह नेत्र उस... कुछ वैशिष्ट्य पाते हैं, जैसे अक्षय को देखना, उन्हें अच्छा लगता है। अचानक ... वह जगमगा उठते हैं और अनायास ही लजा जाते है। छवि शान्त बैठी रहती ... उसके ओंठ निस्पन्द रहते हैं, पर वे नेत्र पुकार-पुकारकर अक्षय को कुछ जता... चाहते हैं। ऐसे अवसरों पर अक्षय ने अपने को बहुत असहाय पाया और फिर उ... दो क्लासों के बीच में स्टाफ रूम में जाना छोड़ दिया। एक दिन, दो दिन। ती... दिन छवि सन्ध्या को शुक्लाजी के घर आई। भाभी ने चाय बनाकर अक्षय... बुलाया। और तब छवि ने पुस्तक लौटाते हुए कहा : "मैं साहित्य की छात्रा... हूं पर आपकी पुस्तक ने मुझे बहुत विचलित किया।"

"तुम्हारे इस रिमार्क को मैं प्रशंसा के रूप में लेता हूँ। पर यह लौटा क्यों रही हो ? यह तो तुम्हारी प्रति है।"

"सच !" छवि की आँखें मधुर विस्मय से भर उठीं। अक्षय को उस समय गुड्डी और छवि की आयु में कोई अन्तर नहीं लगा। वह निरुद्देश्य ही सोच उठा कि वह छवि को छोड़कर उसके बारे में कुछ भी नहीं जानता। छवि के अन्य भाई-बहन हैं, कभी उसने उल्लेख नहीं किया, पर लाड़ली अकेली बेटी-सा भी आचरण छवि का न था। इस समय, सांझ के धुंधलके में, भाभी के कमरे के आत्मीय वातावरण में बैठकर चाय पीते हुए अक्षय को अपनी उपस्थिति स्वयं असह्य, असंगत लगने लगी। उसने अपने इन विचारों को जकड़कर बांध दिया और वह छवि को देखने लगा। छवि कुछ उदास हो आई थी, कुछ खोई-सी गई थी। "अरे—तुम दोनों तो एकदम चुप हो गए।" भाभी ने उस लम्बी चुप्पी को तोड़ा।

"यह वर्षा का सीजन ही ऐसा है, बहुत डिप्रेसिंग।" अक्षय ने कहा।

"और फिर यहां की लम्बी, खाली शामें। न कुछ पीने को, न दिल बहलाने को। अक्षय बाबू, आपके लिए दवा खोजनी पड़ेगी, कुछ रंगीन, कुछ चटपटी।"

अक्षय ने पाया, भाभी की इस बात पर छवि के ओंठ थोड़ा-सा हिलकर रह गए। फिर उसने अक्षय को देखा, पर अक्षय की तोलती-सी दृष्टि अपने पर पा वह लजा गई।

"हां अक्षय बाबू, दवा खोजनी पड़ेगी। अगर साथ में मेरे लिए देवरानी ले आते तो मेरा सिरदर्द कम होता। अब उसे खोजने में कितनी दिक्कत उठानी पड़ेगी मुझे, यह बताओ तो ?"

मिसेज शुक्ला की इस बात पर न छवि ने कुछ कहा, न अक्षय ने। भाभी ने दोनों को बारी-बारी से देखा, फिर चाय छानने लगी। उन दोनों के चेहरे दो प्रेमियों के से नहीं थे, दो मित्रों के भी नहीं। वे अपने अन्तर-तल की गहराइयों में डूब गए थे। अक्षय के लिए भाभी, छवि, यह चाय पीने की क्रिया छाया-मात्र रह गई और वह चाय का प्याला पकड़े बैठा रह गया।

"और चाय ?" भाभी ने पूछा।

"नहीं।" प्याला रख अक्षय उठ खड़ा हुआ और उन दोनों से आज्ञा ले, अपने कमरे में चला गया। उसने अपने रेकार्ड प्लेयर पर बेथोवेन की एक सिम्फनी का रेकार्ड लगा दिया और चारपाई पर आड़ा होकर लेट गया। अक्षय

नॉवेल लिख सकता है। और लोग उसे उसी कौतूहल से पढ़ते हैं जैसे कि लोग सरकस देखने जाते हैं।"

छवि के चेहरे पर प्रश्न-भरा भाव देखकर अक्षय ने मुस्कराकर आगे जोड़ा : "लेखक मैं नहीं हूं छवि। वह एक पुस्तक फीक समझ लो।"

"फिर भी मैं पढ़ना चाहूंगी।"

"मेरे पास कुछ प्रतियां पड़ी हैं, उनमें से एक लें लो।" अक्षय ने उठकर अपना लॉकर खोला और एक प्रति निकालकर छवि के आगे मेज़ पर रख दी। छवि ने मुस्कराकर धन्यवाद दिया और पुस्तक उठाकर पहला पृष्ठ खोला। उसकी आंखें कुछ समय एक पंक्ति पर टिकी रहीं। अक्षय जानता था कि छवि उस समर्पण को पढ़ रही है—"सुधीरा को।"

फिर पृष्ठ पलट दिया गया। छवि ने पुस्तक वन्द कर दी और कहा : "इसे यहां पढ़ना नहीं प्रारम्भ करूंगी। घर जाकर चैन से पढ़ूंगी।"

घण्टा कुछ मिनट पहले वज चुका था। कुछ लोग एकसाथ ही अन्दर आए। छवि और अक्षय को पास वैठा देख कुछ मुस्कराये, कुछ चुप रहे। शायद छवि ने यह जाना, वह पुस्तक पकड़े हुए उठ गई।

कुछ दिन वाद अक्षय ने यह नोटिस किया कि छवि अपनी क्लास प्रारम्भ होने से काफी पहले आ जाती है। अक्षय उस समय खाली होता है। छवि आकर दो प्याले चाय वनवाती है और फिर दोनों उस कृत्रिम सन्नाटे में वैठकर चाय पीते हैं। दोनों ही प्रायः चुप रहते हैं। पुस्तक पाने के वाद छवि ने उसका उल्लेख नहीं किया, न अक्षय ने ही उसकी प्रतिक्रिया पूछी। अक्षय ने पाया कि छवि स्वयं जितना मौन रखती है, उसके नेत्र उतने ही मुखर हैं। अक्षय को लगा कि वह नेत्र उसमें कुछ वैशिष्ट्य पाते हैं, जैसे अक्षय को देखना, उन्हें अच्छा लगता है। अचानक ही वह जगमगा उठते हैं और अनायास ही लजा जाते है। छवि शान्त वैठी रहती है, उसके ओंठ निस्पन्द रहते हैं, पर वे नेत्र पुकार-पुकारकर अक्षय को कुछ जताना चाहते हैं। ऐसे अवसरों पर अक्षय ने अपने को वहुत असहाय पाया और फिर उसने दो क्लासों के वीच में स्टाफ रूम में जाना छोड़ दिया। एक दिन, दो दिन। तीसरे दिन छवि सन्ध्या को शुक्लाजी के घर आई। मामी ने चाय वनाकर अक्षय को वुलाया। और तव छवि ने पुस्तक लौटाते हुए कहा : "मैं साहित्य की छात्रा नहीं हूं पर आपकी पुस्तक ने मुझे वहुत विचलित किया।"

"तुम्हारे इस रिमार्क को मैं प्रशंसा के रूप में लेता हूँ। पर यह लौटा क्यों रही हो ? यह तो तुम्हारी प्रति है।"

"सच !" छवि की आंखें मधुर विस्मय से भर उठीं। अक्षय को उस समय गुड्डी और छवि की आयु में कोई अन्तर नहीं लगा। वह निरुद्देश्य ही सोच उठा कि वह छवि को छोड़कर उसके बारे में कुछ भी नहीं जानता। छवि के अन्य भाई-बहन हैं, कभी उसने उल्लेख नहीं किया, पर लाड़लो अकेली बेटी-सा भी आचरण छवि का न था। इस समय, सांझ के धुंधलके में, भाभी के कमरे के आत्मीय वातावरण में बैठकर चाय पीते हुए अक्षय को अपनी उपस्थिति स्वयं असह्य, असंगत लगने लगी। उसने अपने इन विचारों को जकड़कर बांध दिया और वह छवि को देखने लगा। छवि कुछ उदास हो आई थी, कुछ खो-सी गई थी। "अरे—तुम दोनों तो एकदम चुप हो गए।" भाभी ने उस लम्बी चुप्पी को तोड़ा।

"यह वर्षा का सीजन ही ऐसा है, बहुत डिप्रेसिंग।" अक्षय ने कहा।

"और फिर यहां की लम्बी, खाली शामें। न कुछ पीने को, न दिल बहलाने को। अक्षय बाबू, आपके लिए दवा खोजनी पड़ेगी, कुछ रंगीन, कुछ चटपटी।"

अक्षय ने पाया, भाभी की इस बात पर छवि के ओंठ थोड़ा-सा हिलकर रह गए। फिर उसने अक्षय को देखा, पर अक्षय की तोलती-सी दृष्टि अपने पर पा वह लजा गई।

"हां अक्षय बाबू, दवा खोजनी पड़ेगी। अगर साथ में मेरे लिए देवरानी ले आते तो मेरा सिरदर्द कम होता। अब उसे खोजने में कितनी दिक्कत उठानी पड़ेगी मुझे, यह बताओ तो ?"

मिसेज शुक्ला की इस बात पर न छवि ने कुछ कहा, न अक्षय ने। भाभी ने दोनों को बारी-बारी से देखा, फिर चाय छानने लगी। उन दोनों के चेहरे दो प्रेमियों के से नहीं थे, दो मित्रों के भी नहीं। वे अपने अन्तर-तल की गहराइयों में डूब गए थे। अक्षय के लिए भाभी, छवि, यह चाय पीने की क्रिया छाया-मात्र रह गई और वह चाय का प्याला पकड़े बैठा रह गया।

"और चाय ?" भाभी ने पूछा।

"नहीं।" प्याला रख अक्षय उठ खड़ा हुआ और उन दोनों से आज्ञा ले, अपने कमरे में चला गया। उसने अपने रेकार्ड प्लेयर पर बेथोवेन की एक सिम्फनी का रेकार्ड लगा दिया और चारपाई पर आड़ा होकर लेट गया। अक्षय अपने साथ

पाश्चात्य क्लासिकल संगीत के चालीस रेकार्ड लाया था। रेकार्ड के कवर्स पर सुधीरा की हस्तलिपि में अपना नाम देखकर अभी भी आहत होने की क्षमता बाकी थी।

वे लम्बे दिन जो रेकार्डों के कैटेलाग देखते हुए काटे गए थे, जो शामें नये खरीदे हुए रेकार्ड सुनते हुए बीती थीं, थर्डस्ट्रीट के बदरंगे वॉलपेपर वाले कमरे में संगीत के स्वर गूंजते थे और अक्षय सुधीरा के मुख पर भावविभोर एकटक ताकता था। कन्सर्ट्स, आपेरा, बैले—एकाएक अक्षय को सब अच्छा लगने लगा। कसी हुई काली ड्रेस और लम्बी, पतली हील वाले जूतों में सुधीरा बहुत आकर्षक लगती थी।

कभी-कभी रात को फोन बजता था। टाइपराटर छोड़कर फोन तक आने से पहले ही अक्षय सुधीरा के स्वर को सुनने की उत्कण्ठा से भर उठता था।

"अभी भी टाइप कर रहे हो? टाइप फॉर ए ब्रेक। पास के अपार्टमेण्ट में लिजबेथ पार्टी दे रही है। छह बीयर लेते आना, काफी होंगी।" रात के अंधेरे में पहाड़ी सड़कों की ऊंची-नीची उतराइयों पर सावधानी से ड्राइव करता हुआ अक्षय तब सुधीरा के बारे में ही सोचता था।

एक ऐसी ही पार्टी में उसका परिचय बीरू से हुआ। सुधीरा गिटार बजाकर जिप्सी गीत गा रही थी और बीरू अलग दीवार के सहारे उकताया-सा खड़ा था। अक्षय ने जाना, बीरू भी ट्रिनीडाड से आया भारतीय है। उसकी शिक्षा सुधीरा के साथ ही इंगलैण्ड में हुई और दोनों के परिवार एक-दूसरे से परिचित हैं।

"आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं कुछ दिन हुए ट्रिनीडाड से लौटा हूं। क्रिसमस की छुट्टी में घर गया था। सुधीरा के फादर ने आपका उल्लेख किया था," बीरू ने कहा।

सुधीरा का गीत समाप्त होने पर दोनों ने तालियां बजाईं। वह गिटार रखकर उनके पास आ खड़ी हुई, "तो तुम दोनों एक-दूसरे से परिचित हो गए। अक्षय, बीरू और मेरी पुरानी पहचान है। सेण्ट जेम्स में हम लोग साथ ही बड़े हुए, देखो, मदर ने यह सोने की चूड़ियां भेजी हैं।" वह अपने हाथ की चूड़ियां हिलाने लगी।

सुधीरा को कोई प्यार कैसे न करे! अक्षय ने सोचा, बालिका और पूर्ण

युवती—ऐसा सम्मिश्रण था उसमें।

सुधीरा वीरू से मित्रों, आत्मीयों के बारे में पूछती रही और रह-रहकर चूड़ियां हिलाती रही।

कुछ देर में वीरू ने जाने के लिए आज्ञा मांगी और टैक्सी का नम्बर पूछा।

"तुम्हारी कार क्या हुई?" सुधीरा ने पूछा।

"मैंने नई जर्मन कार का आर्डर दिया है। लाल कनवर्टिबल कारमनगिया! आने में कुछ समय लगेगा।"

"मैं भी जाने का इरादा कर रहा हूं। कहां रहते हैं आप? आपको घर तक पहुंचा दूंगा।" अक्षय ने कहा।

वीरू ने धन्यवाद देकर यह ऑफर स्वीकार कर लिया।

"तुम साथ आओगी सुधीरा?" अक्षय ने पूछा, "नया चेप्टर दिखाना चाहता था।"

"अक्षय आजकल एक उपन्यास लिख रहा है।" सुधीरा ने वीरू को बताया।

"कल आऊंगी अक्षय। पार्टी के बाद सफाई में सहायता करने का वचन दे चुकी हूं।"

अक्षय को कुछ बुरा-सा लगा और कदाचित् इसीलिए वह वीरू के साथ होते हुए भी रास्ते-भर चुप रहा। अगली दोपहर जब सुधीरा गुलाबी छपी हुई साड़ी पहने, आकर द्वार पर खड़ी हो गई तो अक्षय पिछली रात की आहत पीड़ा भूल गया। सुधीरा अक्षय के लिए लंच तैयार करने लगी और अक्षय किचेन में कुर्सी पर बैठकर अपना लिखा अध्याय पढ़कर सुनाने लगा।

शाम को वीरू का फोन आया। उसने रात्रि के भोजन के लिए सुधीरा व अक्षय को आमन्त्रित किया। सुधीरा को कपड़े बदलने के लिए अक्षय घर वापस ले गया और भोजन के दौरान अक्षय ने एकाएक महसूस किया, वीरू अच्छा है, वीरू भला है, कम बोलता है और उसकी कम्पनी बोरिंग नहीं है। सुधीरा रह-रहकर हंसती थी और उसके बुन्दे धीरे-धीरे हिलते थे। जब कभी उसके शरीर का कोई अंग अक्षय से छू जाता तो वह उसके सामीप्य की गरमाई से अभिभूत हो उठता। 'सुधीरा मेरी है, पूर्ण रूप से मेरी है।' सुधीरा की दीप्त काली आंखों में भी अक्षय ने अपनी ही भावनाएं प्रतिबिम्बित होते पाईं। फिर लम्बे दिन। अक्षय दिन-रात अपनी पुस्तक समाप्त करने में जुटा था। शब्दों के बाद शब्द गुंथते चले आते थे

और उपन्यास के पात्र बड़े पुराने परिचित, हर क्षण के साथी बन गए। सुधीरा उन दिनों अत्यन्त धीर, सहिष्णु हो गई थी। कभी-कभी आकर अक्षय का कमरा ठीक कर जाती, कभी खाने के लिए कुछ लाकर किचन में रख जाती। 'सुधीरा को' उपन्यास की समाप्ति पर अक्षय ने समर्पण लिखा था। एक नये उपन्यास की रूप-रेखा जमने लगी थी।

वह उपन्यास कभी नहीं लिखा गया।

"अक्षय बाबू।" भाभी ने कमरे के बाहर से कहा।

"हां।" अक्षय ने उत्तर दिया। बेथोवेन की सिम्फनी अन्त पर थी। और भाभी ने अन्दर आकर कहा : "हाय राम, मेरे तो कान फट गए ! जाने तुम्हें क्या अच्छा लगता है इस संगीत में ?" अक्षय ने रेकार्ड प्लेयर बन्द कर दिया।

"एक टेढ़ा काम तुम्हें संभालना है," भाभी ने कहा।

"क्यों, क्या बात है ?"

"हम लोग आज सिनेमा जाना चाहते हैं, सेकेण्ड शो में। ये तो सुनते ही मना कर देंगे। सो तुम्हें साथ चलना पड़ेगा।"

अक्षय एकाएक कुछ कह न सका। पर सेकेण्ड शो में सिनेमा हाल की भीड़ का सामना करने का विचार उसे प्रिय न लगा। "हम लोग कौन ?"

"छवि और मैं।"

अक्षय को लगा कि उसके द्वार के बाहर भी कोई है, जो अधीर प्रतीक्षा से उसका उत्तर सुन रहा है। फिर भी उसने कहा : "भाभी, हिन्दी फिल्म तो मैं देखता नहीं।"

भाभी चुप रह गईं। अक्षय जैसे दीवार के पार भी दो उत्सुक आंखों का म्लान हो आना देख सका। उसने आगे कहा : "पर तुम्हारी खातिर चला चलूंगा।"

भाभी प्रसन्न हो गईं। अक्षय जा रहा है, यह सुन अनिमन्त्रित शुक्लाजी भी जाने को तैयार हो गए। गुड्डी ने सिनेमा हाल में शोर न मचाने का वचन दिया। भाभी ने व्यवस्था की, छवि को घर जाकर पिताजी से कहना है इसलिए अक्षय उसे लेकर पहले चला जाए। शुक्लाजी भाभी को लेकर सीधे सिनेमा हाल पहुंचेंगे। अक्षय ने छवि की प्रतिक्रिया जानने के लिए उसकी ओर देखा, पर वह

चुप रही। अक्षय तैयार होने के लिए कमरे में चला आया। सफेद कमीज और हलके ग्रे डैकरान की पतलून पहनकर बालों में कंघा फेरते हुए उसने अपने को एक पल निश्चल खड़े होकर देखा। उसका चेहरा इस समय गम्भीर था, आँखें गहरी और प्रच्छन्न। न चाहते हुए भी उसे वह लम्बे, सुनहरे पतझर के दोपहर याद आ गए, जो उसने सुधीरा के साथ बिताए थे। सुधीरा का शरीर भी उन दोपहरों की भांति उष्ण और स्वर्णिम था, उसकी उंगलियां धीरे-धीरे अक्षय के चेहरे को छूती थी और डूबते सूरज की रोशनी बदरंगे वालपेपर वाले कमरे में भर जाती थी। अक्षय का चेहरा तब शान्त दीखता था। सुधीरा के जाने के बाद अक्षय टाइपराइटर खोलकर बैठ जाता था और उंगलियां उसपर तेजी से दौड़ती थीं। उसके मन में गहरी शान्ति रहती थी और अगले दोपहर के लिए सांस साधकर प्रतीक्षा।

अक्षय को अपनी पुस्तक के जैकेट पर अपना चित्र याद आया, युवा, सैन्सेटिव, गम्भीर। इस समय दर्पण में प्रतिबिम्ब कहीं अधिक प्रौढ़ व उदास लग रहा था।

अक्षय तैयार होकर बाहर आया और छवि चलने के लिए उठ खड़ी हुई। भाभी गुड्डी के बाल संवार रही थीं। उनसे विदा लेकर दोनों सड़क पर आ गए। अब अक्षय चुप था और छवि भी। वार्तालाप प्रारम्भ करने को कोई भी उत्सुक न था। कहीं वह मौन उसकी नाराजी न लगे, यह सोच अक्षय ने कहा : "आज शायद पानी न बरसे!"

"मुझे वर्षा अच्छी लगती थी, पर इस बार न जाने क्यों ऊब गई हूं," छवि ने कहा।

"पानी बरस भी तो लगातार रहा है," अक्षय ने कहा और फिर मुस्कराने लगा। छवि के प्रश्न-भरे नेत्र उसकी ओर उठे और प्रश्न ओंठों पर आकर रह गया। वह दूसरी ओर देखने लगी और यह छोटा-सा पल अक्षय को बड़ा प्यारा लगा। छवि संकोचशील है, अपने इन इनहिबिशन्स से बाहर निकलना चाहती है, पर उसकी चेष्टा में इतना बल नहीं है कि उन्हें लांघ सके। और इसीके साथ जुड़ा हुआ एक और विचार आया, छवि मुझे लाइक करती है।

उसने पास चलती छवि को देखा, लपेटी हुई साड़ी में भी उसका पूर्ण यौवन और उन रेखाओं की कमनीयता छिपी नहीं थी। अक्षय ने जाना कि उसकी तृ—

अत्यन्त कोमल, स्निग्ध और उष्ण होगी। छवि का चेहरा लम्बा था, आंखें शान्त, पर ओंठ अजन्ता के चित्रों की भांति भरे हुए थे। छवि सुन्दर नहीं है, पर उसमें अपना एक विशिष्ट चार्म है, अक्षय ने सोचा। और कई वर्ष बाद एकाएक अक्षय ने अपने अन्दर एक इच्छा को जागते पाया। एक उष्ण, स्वर्णिम शरीर को बांहों में जकड़ने की तीव्र इच्छा।

अक्षय को एकटक अपनी ओर देखते पाकर छवि ने ग्रीवा मोड़कर उसे देखा और मुस्करा दी। उन शान्त और विश्वासपूर्ण आंखों के आगे अक्षय एक क्षण पहले के विचारों पर अत्यन्त लज्जित हो आया, पर छवि की हलकी मुस्कराहट वह सेतु थी जिसके सहारे वह उबरकर सुस्थ हो सका। छवि एक दोमंजिले मकान के आगे रुककर फाटक खोलने लगी। अक्षय उसके साथ अन्दर आया।

"आप कुछ देर बैठेंगे ? पिताजी इस समय पूजाघर में होंगे। मैं जल्दी ही आऊंगी।" छवि कहकर क्षिप्र गति से अन्दर चली गई। घर के अन्दर जैसा सन्नाटा था, उससे अक्षय ने सहसा जाना कि पिता को छोड़कर छवि के परिवार में और कोई नहीं है। बैठक में एक सोफा व तीन-चार कुर्सियां थीं, बीच में एक गोल मेज। दीवारें सफेद और सूनी, कहीं एक भी चित्र नहीं। दरवाज़ों पर भूरे रंग के पर्दे थे, जिनसे कमरा और भी उदास लग रहा था।

छवि घर की सज्जा में रुचि क्यों नहीं लेती, अक्षय ने सोचा, यदि दीवार पर एक चित्र हो और मैचिंग पर्दे और एक स्टैण्डर्ड लैम्प, तो कमरा कहीं अधिक अच्छा लगे। पर शायद छवि का ध्यान इस ओर नहीं गया है।

और तभी छवि आकर द्वार पर खड़ी हो गई। उसने इस बीच में बाल संवारकर छपी हुई साड़ी पहन ली थी। एक हाथ किवाड़ पर टिकाए वह निश्चल खड़ी हो अक्षय को सीधी दृष्टि से ताकने लगी।

"मैंने नौकर को रिक्शा लाने के लिए भेजा है, तब तक आप कुछ पिएंगे ? चाय, कॉफी ?"

"नहीं छवि, धन्यवाद।"

छवि आकर एक कुर्सी पर बैठ गई और उसकी उंगलियां बटुए की डोरी से खेलने लगीं।

"इस साड़ी को मैंने तुम्हें पहले पहने नहीं देखा है। तुम्हें सूट करती है।"

छवि के चेहरे पर मन्द मुस्कान की आभा झरने लगी।

"मिसेज शुक्ला ने यह साड़ी मुझे दी थी, मुझे अच्छी लगी थी।"

'ओ ऽ," अक्षय ने जान लिया कि यह साड़ी उसीकी लाई हुई है। वह हंसने लगा।

"अच्छा छवि, तुम्हें पेंटिंग में रुचि है ?"

"मैंने कभी उधर ध्यान नहीं दिया।"

"मेरे पास कुछ पेंटिंग्स के प्रिंट हैं। अगर तुम चाहो तो एक ले सकती हो," अक्षय ने कहा। छवि की आंखें विस्मय से भर उठीं। फिर उसने सोचते हुए कहा : "हूं ? अच्छा मैं किसी दिन आकर देखूंगी।"

बाहर रिक्शा रुका और छवि उठ खड़ी हुई, "चलिए, रिक्शा आ गया।"

अक्षय को लगा, छवि उसके मौन और विरक्ति की आदी हो गई है। पर उसके द्वारा अपनी प्रशंसा सुन, समझ नहीं पाती कि क्या करे।

रिक्शे पर छवि सिमटकर बैठ गई, जैसे उसने सहसा जाना हो कि रिक्शे जैसी सवारी पर बैठकर औपचारिकता निभाना सम्भव नहीं। सड़क के गड्ढे से हिचकोला खाकर जब अक्षय का शरीर उससे छू जाता तो वह कोने में सिमटने लगती। अक्षय उसकी हर चेष्टा को बारीकी से देख रहा था, उसे पहले हंसी आई, फिर पुरुष के अयाचित स्पर्श पर लाजवन्ती-सा सिमट जाना उसके मन को बड़ा प्यारा लगा।

"छवि, तुम्हें मालूम है कि भारतीय स्त्रियां विदेश में बहुत सुन्दर मानी जाती हैं ?"

"अच्छा !" छवि ने आश्चर्य में भरकर पूछा।

"हां, मेरे एक मित्र ने पूरी गर्मी दिल्ली में गुली बाहों को देखते हुए काटी थी। उसका कहना था कि तेहरान से लेकर टोकियो तक की यात्रा में भारतीय स्त्रियां ही सुन्दरता में अग्रिम थीं।"

"और आपको, पाश्चात्य युवतियां कैसी लगीं ?" छवि ने पूछा।

"जब तक पता नहीं था, तब तक उनके सुनहरे बाल अच्छे लगते थे। पर कुछ महीने के बाद मालूम हुआ कि प्रायः वह सुनहरा रंग, हेयर ड्रेसर की कृपा मात्र थी।"

छवि हंसने लगी, "आपने वहां भारतीय फिल्में तो कम ही देखी होंगी?"

"हां—मुश्किल से दो। पर यूरोपीय फिल्में बहुत देखता था। [illegible]

...लियन और स्वीडिश। वहां बहुत ही डेयरिंग प्रयोग किए जा रहे हैं, जबकि ... अभी भी वही आंसू-भरे गीत गा रहे हैं।"

"बस—अब आप भी औरों की तरह बात करने लगे।"

अक्षय हंसने लगा, "हमारी फिल्में अफ्रीका व मिडिल ईस्ट में बहुत पॉपुलर ...हैं।"

"देखिए, आप आए हैं तो फिल्म को बहुत बुरा-भला न कहिएगा। नहीं तो मिसेज़ शुक्ला को अच्छा न लगेगा।"

अक्षय ने छवि की उल्लसित, तरल, कोमल दृष्टि से अभिभूत होकर कहा, "मैं वचन देता हूं।" और एक बार फिर छवि के काले चिकने बाल, रोली की बड़ी-सी बिन्दी और निस्पन्द पंखुड़ियों से ओंठ देखते हुए वह स्वयं अपनी कामना के तीव्र वेग से आशंकित हो उठा।

शुक्लाजी वहां पहले ही पहुंच गए थे। रिक्शेवाले को पैसे देकर अक्षय उनके पास आ गया। गुड्डी गोल-गोल आंखों से पोस्टर देख रही थी और भाभी छवि से बातें करने में व्यस्त हो गई थीं। अक्षय अपने पाइप में तम्बाकू भरने लगा, छवि कभी-कभी उसकी ओर देख लेती और उस दृष्टि में अब दूरी नहीं थी।

पहले शो की समाप्ति पर अक्षय को छोड़कर वे लोग अन्दर गए। गुड्डी भाभी और छवि के बीच बैठकर पोटैटोचिप्स खाने लगी। अक्षय पाइप बुझाकर जब तक अन्दर आया, तब तक न्यूज़ रील प्रारम्भ हो चुकी थी। एक किनारे छवि के पास कुर्सी खाली थी। अक्षय उसपर बैठ गया। कुछ देर बाद उसने बायीं बांह से छवि का कन्धा घेर लिया और छवि बिना प्रतिवाद किए उसकी ओर झु... आई।

अक्षय काफी रात गए घर लौटा। अन्दर बरामदे में कुर्सी पर बैठी भाभी... देखकर वह चौंक गया।

"तुम अभी तक सोईं नहीं।"

"नींद नहीं आई। सोचा कि गुड्डी के फ्रॉक में बटन टांक लूं।"

"मुझे छवि के फादर ने रोक लिया," अक्षय ने सहज स्वर में कहा, "... इण्टरेस्टिंग हैं।"

"खाक इण्टरेस्टिंग हैं।" भाभी बोली, "बीवी को कुढ़ा-कुढ़ाकर मार डाला। बेटी जवान हो गई है, पर उसकी शादी की चिन्ता नहीं। शाम को पूजाघर निकलते हैं और बोतल लेकर बैठ जाते हैं।"

"बहुत आग्रह कर रहे थे। पर मैंने मना कर दिया। कुछ बुरा-सा मान गए।"

भाभी ने पूछा : "पर वहां, अमरीका में तो पीते होगे तुम ?"

"पर यह अमरीका तो नहीं है भाभी। फिर मैंने सोचा कि शायद मेरा कु पीना छवि को अच्छा न लगे।"

भाभी ने हाथ रोक दिए। फ्रॉक को गोद में पड़ा रहने देकर उन्होंने कुछ हिच कते स्वर में पूछा "अक्षय बाबू, अच्छा तुम्हें छवि कैसी लगती है ?"

अक्षय असमंजस में पड़कर चुप रह गया। उसे घर से निकलकर द्वार त विदा देने आई छवि की मुखमुद्रा याद आई। एक बार कांपकर फिर अपन बांहों में निश्चल हो आना और उसके गीले, कोमल अनछुए होंठ।

और इसके साथ ही एक और प्रतिच्छाया, सुधीरा! भाभी ने उसके छोटे-से मौन को लांघकर कहा : "सुन्दर तो वह नहीं है, पर उसका शिष्ट, भल स्वभाव तुमसे छिपा नहीं है। प्यार के लिए तरसती रहती है। बड़ा भाई शादी क अलग हो गया है। कभी पूछता भी नहीं। और तुम भी अब नार्मल तरीके जिन्दगी बिताओ, साल पर साल निकलते जा रहे हैं।"

"मुझे घर से निकालना चाहती हो भाभी ?"

"नहीं अक्षय बाबू," भाभी गम्भीर हो आईं, "तुम जब से लौटे हो, मुझ हर समय तुम्हारी चिन्ता लगी रहती है। तुम पहले से बहुत ज्यादा बदल गए हो जैसे तुम्हारे अन्दर कहीं कुछ बड़ी बेचैनी, तिलमिलाहट है''' तुम घण्टों कमरा ब किए पड़े रहकर रेकार्ड सुना करते हो। कई-कई दिन निकल जाते हैं और तु मुंह नहीं खोलते। मैं चुपचाप देखती हूं और मन में सोचती हूं कि ऐसा क्या जो तुम्हें साल रहा है ? तुमने जब वहां से चिट्ठी लिखी कि एक लड़की शादी करने वाले हो, तो हम दोनों को बड़ी खुशी हुई। पर फिर कई साल बीत गए और तुमने एक पंक्ति भी नहीं लिखी। फिर एक दिन बिना सूचना दिए लौ आए।"

अक्षय के मन में कुछ उभड़ने लगा। काश, भाभी ने यह रात इन बातों के कुरेदने के लिए न चुनी होती। कितने, कितने समय के बाद आज अक्षय के म

पर गाढ़ा-गाढ़ा जमा हुआ अकेलापन कुछ कम हुआ था। पर भाभी ने बिना जाने फिर अतीत के गहरे, काले, अन्तहीन आवर्त में ढकेल दिया है।

क्या उससे कभी निष्कृति न होगी ?

बरामदे के चारों ओर अंधेरा है। कहीं कोई शब्द नहीं। बरामदे में प्रकाश का एक दायरा है, जिसमें भाभी बैठी हैं, उनकी गोद में गुड्डी की फ्रॉक पड़ी हुई है। भाभी थकी-सी हैं पर उनकी आंखों में आत्मीयता है।

अक्षय पास की कुर्सी पर बैठ गया और अंधेरे में कुछ खोजने लगा। फिर उसने मुड़कर, धीर, प्रतीक्षित भाभी को देखा।

"उस लड़की ने आखिरी समय पर अपना विचार बदल दिया। उसने कहा कि वह किसी और से विवाह करना चाहती है। उस दूसरे को वह बचपन से से जानती थी।"

सांप की तरह से अंधेरा बल खाने लगता है। उस आघात का दर्द मिट चुका है, फिर भी अक्षय कुछ और न कह सका।

"और छवि ?" भाभी ने हलके से पूछा।

"छवि मुझे अच्छा लगती है। शायद तुम ठीक कहती हो। अपने अन्दर की इन उलझनों को भूलकर मुझे नार्मल तरीके से जिन्दगी बितानी चाहिए। शादी कर गृहस्थ बनूं और टेक्स्ट बुक लिखना प्रारम्भ करूं।" पर भाभी प्रसन्न होकर मुस्करातीं नहीं, जैसे उनके हर्ष में कोई दरार पड़ गई हो।

अक्षय प्रिण्ट्स देखता है, पता नहीं छवि को कौन-सा पसन्द आएगा। फिर भी अगली शाम को वह तीन-चार प्रिण्ट्स लेकर छवि के घर गया। दरवाज़ा छवि ने खोला और उसे देख वह जिस प्रकार लजा गई उससे अक्षय ने जान लिया कि उसकी स्वीकृति भाभी ने छवि तक पहुंचा दी है।

"आइए," कहकर छवि ने दरवाज़ा पूरा खोल दिया, "पिताजी अभी-अभी पूजा पर बैठे हैं, कुछ समय लगेगा।"

"तुम्हारे लिए प्रिण्ट्स लाया हूं," अक्षय ने कहा। छवि ने बैठक की बिजली जला दी और अक्षय ने प्रिण्ट्स कुछ तिरछे कर सोफे के सहारे टिका दिए।

कुछ दूर खड़े होकर, उन्हें देखते हुए छवि ने कहा : "मैं तो पेंटिंग्स के बारे में कुछ भी नहीं जानती।"

"तुम्हें जो सबसे अच्छा लगे, वह चुन लो।" अन्त में छवि ने ब्राकका जोशी

स्केप चुना। उससे अक्षय को बहुत आश्चर्य हुआ।

"मुझे इसमें से ग्रे और नावों का ब्लू अच्छा लग रहा है," छवि ने कहा।

अक्षय वहां अधिक देर तक न रुका। वह अन्य प्रिण्ट्स भी छवि के पास छोड़ आया। उसके अन्दर फिर एक बेचैनी जाग उठी थी।

फिर वर्षा बीत गई और नीले आकाश में सफेद बादल तैरने लगे। इस बीच में अक्षय छवि को बहुत कम देख पाया। वह अक्षय के सामने पड़ने से बचती-सी मालूम होती थी। अक्षय ने अपने को कभी-कभी उसके साथ बिताए जाने वाले भविष्य के बारे में सोचता पाया। तब छवि जानी-पहचानी स्त्री लगने की जगह एक अनजान छाया-मात्र रह जाती थी। छवि घर की देखभाल अच्छी तरह करेगी, इसमें अक्षय को संशय न था, पर अपने अन्दर की जो उद्विग्नता है उसे छवि का साहचर्य कहां तक दूर कर पाएगा! पर तब तक अक्षय अपने को पूरी तरह कमिट कर चुका था, और अब अपने निश्चय से पीछे हटकर छवि को आघात पहुंचाने का साहस उसमें न था।

भाभी ने अपने को छोटे-छोटे कामों में उलझा लिया था। विवाह की तारीख नवम्बर में निकली थी। भाभी इस शुभ कार्य को टालना नहीं चाहती थी। शुक्लाजी ने दूसरी मंजिल बनवानी प्रारम्भ कर दी थी और ऊपर का फ्लैट तैयार होने पर पहला ऑफर अक्षय को मिलेगा, यह बात उन्होंने साफ कर दी थी। कभी-कभी वह अक्षय से राय लेते, आलमारी कहां बने, खिड़कियां कैसी हों? सारे दिन-रात मजदूर खट-खट किया करते और ईंटों का चूरा नीचे बिखरा करता।

अक्षय के चारों ओर गतिविधि थी, पर वह इसके बीच अछूता खड़ा था। भाभी ने शादी की बात फैलाई नहीं थी, इसलिए इसकी चर्चा कहीं न थी। अक्षय दिन में कॉलिज जाता और शामें अकेले टहलते हुए बिता देता। प्रायः वह टहलता हुआ दूर निकल जाता और अपने शरीर को शिथिल छोड़ देता। उस समय वह सायास अपने मस्तिष्क में कोई विचार न उठने देता। उसकी आत्मविध्वंसक प्रवृत्ति कम होती जा रही थी, पर उसकी जगह जैसा शैथिल्य छा रहा था वह अक्षय को स्वयं स्वस्थ न लगता।

विवाह के एक सप्ताह पहले अक्षय बेतरह उद्विग्न हो उठा। कई रात से सोया न था और हर सुबह बेहद थका हुआ उठता। इतने वर्षों से वह जो बोझ अपने ऊपर लिए घूम रहा था, वह असहनीय लगने लगा। अक्षय ने जाना कि जो कुछ अब तक स्वयं स्वीकार न कर पाया, छवि से कह देना है। सब कुछ। हर डिटेल, हर बात। फिर निर्णय छवि का होगा।

उस शाम वह छवि के घर पहुंचा। उसे देखकर आश्चर्य हुआ कि द्वार पर रंगीन बन्दनवार लटक रही थी। घर के अन्दर कुछ बातचीत, कुछ चहल-पहल का शोर था। नौकर ने उसे पहचानकर सलाम किया और अक्षय ने छवि से मिलने की इच्छा प्रकट की। वह अन्दर नहीं गया। बाहर खड़ा एक नीबू की पत्ती तोड़कर उंगलियों में मसलने लगा।

कुछ देर में छवि बाहर आई। वह एक रंगीन, पर सादी साड़ी पहने थी। उसका चेहरा शान्त था और उसे देख अक्षय को बहुत बल मिला।

"तुम्हें बहुत दिनों से नहीं देखा छवि। कैसी रहीं?"

"ठीक हूं। अन्दर आकर बैठें," उसने कहा।

"कुछ दूर टहलने चल सकोगी? समय है?" अक्षय ने पूछा। उसने एक ल... पल को छवि को झिझकते पाया; फिर छवि ने कहा : "मैं शाल लेकर अभी आई।" शाल शायद बिल्कुल नई थी। उसकी तहों पर गहरी लकीरें पड़ी हुई थीं। छ... शाल ओढ़कर बाहर निकल आई। उसका चेहरा संयत था, पर अक्षय को ल... कि जैसे वह कुछ घबरा उठी है। दोनों टहलते हुए कुछ दूर निकल आए।

"मौसम अब काफी अच्छा हो गया है," अक्षय ने कहा।

"जी हां।"

फिर मौन। हवा में आनेवाली सर्दी का सन्देश था। छवि ने नीचे स... शाल को कन्धे पर संभाल लिया। सड़क अब दूर जाकर खेतों में खो ग... बरसाती नदी बिल्कुल सूखी थी और अक्षय लकड़ी के पुल की रेलिंग से ... खड़ा हो गया। छवि ने रूमाल से जगह थोड़ी-सी झाड़ी और अक्षय की ... कर बैठ गई। अक्षय कुछ तुरन्त कहने को उत्सुक न था और छवि की मुद्रा ... कि जैसे वह सारी रात, सारी जिंदगी, अक्षय की बात सुनने की प्रतीक्षा ... को प्रस्तुत है। तब अक्षय को अपना यह आचरण बहुत नाटकीय लग ... घर से छवि को जिस प्रकार घसीट लाया है, उसे देख मेहमानों ने क्या स...

और लौटकर छवि क्या उत्तर देगी! अपने इस आचरण का मार्जन करते हुए अक्षय ने बहुत कोमल स्वर में पूछा : "घर में कौन-कौन आया है छवि?"

"मुरादाबाद से बुआ बच्चों को लेकर आई हैं। भाईसाहब दो दिन बाद आएंगे।"

"तुम प्रसन्न हो छवि?"

अक्षय ने छवि को अपनी ओर एकटक देखते पाया। यह कैसा प्रश्न है? फिर उसने पूछा : "और आप?"

"मैं स्वयं नहीं जानता छवि। कभी-कभी बहुत घबरा उठता हूं। पर तुम पास होती हो तो सारे संशय दूर हो जाते हैं।" अक्षय ने अपने को बहता/पाया और दूसरे क्षण अपने कथन की सरलता ने स्वयं उसे झकझोर दिया। उसने झुककर छवि का हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसकी उष्ण, पसीजी हुई-सी हथेली थामे हुए अक्षय को अपने पर आश्चर्य हुआ कि छवि जब हरदम इतनी निकट थी तब उसे संशय क्यों होता रहा? छवि का हाथ पकड़कर वह उस रात की स्मृति का सामना कर सकता था'''उस शाम पहले वर्षा हुई थी और फिर ठण्ड पड़ने से हर जगह बर्फ जम गई थी। सड़क पर मोटरें फिसल रही थीं। और ऐसी रात में बीरू अक्षय की कार मांगने आया था। अक्षय उसे मना करते-करते रुक गया और चुपचाप कार की चाबी उसे दे दी। शायद बीरू को पता नहीं था कि सुधीरा ने सब कुछ अक्षय को बता दिया है, नहीं तो वह ऐसा सहज-स्वाभाविक, मैत्रीपूर्ण व्यवहार न करता। बीरू के जाने के बाद अक्षय ने तुरन्त सुधीरा को फोन किया और रेगुलेटर में एक ड्रिंक के लिए आमन्त्रित किया। सुधीरा ने कहा कि उसे हल्का-सा कोल्ड है, उस रात वह कहीं नहीं जाएगी।

अक्षय उसके बाद कमरे में न रुक सका। कोट पहनकर रेगुलेटर चला गया और बियर पीते हुए टेलीविजन देखता रहा। रात का दो बजा था या तीन, इसकी उसे सुध नहीं। जब वह सर्दी से घर लौटा तो कमरे में दो-तीन मित्र प्रतीक्षा कर रहे थे। अक्षय ने मस्तिष्क के कोहरे को भेदकर बात ग्रहण की, कार का एक्सीडेंट हो गया था। बीरू की तत्काल मृत्यु हो गई और सुधीरा बेतरह आहत हो गई थी।

सुधीरा?

उसके बाद प्रश्न, उत्तर, संवेदना, मित्रों का उसके प्रति कोमल

सुधीरा की मां कैलासी का सब कुछ भूलकर धीरे-धीरे रोना।

ज़िंदगी-भर के लिए अपाहिज हो गई सुधीरा—बोलती नहीं, सुनती नहीं, केवल खुली हुई, सूनी, रिक्त आंखें।

फिर रात को चौंककर जाग जाना और सुधीरा की चीख, कैलासी का धीरे-धीरे रोना। बर्फ पर रक्त के दाग...

"चलो छवि, अब चलें। अंधेरा हो रहा है।" उसने कहा। छवि उठ खड़ी हुई और दोनों पास-पास चलते हुए लौट पड़े। रंगीन वन्दनवार और नई ईंटों का चूरा। अक्षय जान रहा था कि वह छवि के साथ नई ज़िंदगी प्रारम्भ कर सकेगा और कुछ अंश तक सफल भी होगा। पर एक पीड़ा उसकी अपनी है, बिल्कुल अपनी, और उस पीड़ा का स्रोत है यह बोध कि वह यदि चाहता तो बीरू को बचा सकता था, क्योंकि उसे मालूम था कि कार के ब्रेक ठीक नहीं थे।

वापसी

गजाधर बाबू ने कमरे में जमा सामान पर एक नजर दौड़ाई—दो बक्स, डोलची, बालटी—"यह डिब्बा कैसा है गनेशी ?" उन्होंने पूछा। गनेशी बिस्तर बांधता हुआ, कुछ गर्व, कुछ दुःख, कुछ लज्जा से बोला, "घरवाली ने साथ को कुछ बेसन के लड्डू रख दिए हैं। कहा, बाबूजी को पसन्द थे, अब कहां हम गरीब लोग आपकी कुछ खातिर कर पाएंगे।" घर जाने की खुशी में भी गजाधर बाबू ने एक विषाद का अनुभव किया जैसे एक परिचित, स्नेही, आदरमय, सहज संसार से उनका नाता टूट रहा था।

"कभी-कभी हम लोगों की भी खबर लेते रहिएगा।" गनेशी बिस्तर में रस्सी बांधता हुआ बोला।

"कभी कुछ जरूरत हो तो लिखना गनेशी। इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।"

गनेशी ने अंगोछे के छोर से आंखें पोंछी, "अब आप लोग सहारा न देंगे, तो कौन देगा ! आप यहां रहते तो शादी में कुछ हौसला रहता।"

गजाधर बाबू चलने को तैयार बैठे थे। रेलवे क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने ही वर्ष बिताए थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था। आंगन में रोपे पौदे भी जान-पहचान के लोग ले गए थे, और जगह-जगह मिट्टी बिखरी हुई थी। पर पत्नी, बाल-बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह विछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठकर विलीन हो गया।

गजाधर बाबू खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे। संसार की दृष्टि में उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने [illegible]

मकान बनवा लिया था, बड़े लड़के अमर और लड़की कान्ति की शादियां कर दी थीं, दो बच्चे ऊंची कक्षाओं में पढ़ रहे थे। गजाधर बाबू नौकरी के कारण प्रायः छोटे स्टेशनों पर रहे, और उनके बच्चे और पत्नी शहर में, जिससे पढ़ाई में बाधा न हो। गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी। जब परिवार साथ था, ड्यूटी से लौटकर बच्चों से हंसते-बोलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते—उन सबके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा। खाली क्षणों में उनसे घर में टिका न जाता। कवि प्रकृति के न होने पर भी, उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद रहतीं। दोपहर में, गरमी होने पर भी, दो बजे तक आग जलाए रहती और उनके स्टेशन से वापस आने पर गरम-गरम रोटियां सेंकती—उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा-सा कुछ और थाली में परोस देती, और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह, थके-हारे बाहर से आते, तो उनका आहट पा वह रसोई के द्वार पर निकल आती, और उनकी सलज्ज आंखें मुसकरा उठतीं। गजाधर बाबू को तब हर छोटी बात भी याद आती और वह उदास हो उठते…अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।

टोपी उतारकर गजाधर बाबू ने चारपाई पर रख दी, जूते खोलकर नीचे खिसका दिए, अन्दर से रह-रहकर कहकहों की आवाज़ आ रही थी, इतवार का दिन था और उनके सब बच्चे इकट्ठे होकर नाश्ता कर रहे थे। गजाधर बाबू के सूखे चेहरे पर स्निग्ध मुसकान आ गई। उसी तरह मुसकराते हुए, वह बिना खांसे अन्दर चले आए। उन्होंने देखा कि नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे शायद गत रात्रि की फिल्म में देखे गए किसी नृत्य की नकल कर रहा था, और बसन्ती हंस-हंसकर दुहरी हो रही थी। अमर की बहू को अपने तन-बदन, आंचल या घूंघट का कोई होश न था और वह उन्मुक्त रूप से हंस रही थी। गजाधर बाबू को देखते ही नरेन्द्र धप से बैठ गया और चाय का प्याला उठाकर मुंह से लगा लिया। बहू को होश आया और उसने झट से माथा ढक लिया, केवल बसन्ती का शरीर रह-रहकर हंसी दबाने के प्रयत्न में हिलता रहा।

गजाधर बाबू ने मुस्कराते हुए उन लोगों को देखा। फिर कहा, "क्यों नरेन्द्र,

क्या नकल हो रही थी ?" "कुछ नहीं बाबूजी।" नरेन्द्र ने सिटपिटाकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुण्ठित हो चुप हो गए, उससे उनके मन में थोड़ी-सी खिन्नता उपज आई। बैठते हुए बोले, "बसंती, चाय मुझे भी देना। तुम्हारी अम्मां की पूजा अभी चल रही है क्या ?" बसंती ने मां की कोठरी की ओर देखा, "अभी आती ही होंगी," और प्याले में उनके लिए चाय छानने लगी। बहू चुपचाप पहले ही चली गई थी, अब नरेन्द्र भी चाय का आखिरी घूंट पीकर उठ खड़ा हुआ, केवल बसन्ती, पिता के लिहाज से, चौके में बैठी मां की राह देखने लगी। गजाधर बाबू ने एक घूंट चाय पी, फिर कहा, "बिट्टी—चाय तो फीकी है।"

"लाइए, चीनी और डाल दूं।" बसन्ती बोली।

"रहने दो, तुम्हारी अम्मा जब आएंगी, तभी पी लूंगा।"

थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ में अर्घ्य का लोटा लिए निकलीं और अशुद्ध स्तुति कहते हुए तुलसी में डाल दिया। उन्हें देखते ही बसन्ती भी उठ गई। पत्नी ने आकर गजाधर बाबू को देखा और कहा, "अरे, आप अकेले बैठे हैं—यह सब कहां गए ?" गजाधर बाबू के मन में फांस-सी करक उठी, "अपने-अपने काम में लग गए हैं—आखिर बच्चे ही हैं।"

पत्नी आकर चौके में बैठ गईं—उन्होंने नाक-भौं चढ़ाकर चारों ओर जूठे बर्तनों को देखा। फिर कहा, "सारे में जूठे बर्तन पड़े हैं। इस घर में धरम-करम कुछ नहीं। पूजा करके सीधे चौके में घुसो।" फिर उन्होंने नौकर को पुकारा, जब उत्तर न मिला तो एक बार और उच्च स्वर में, फिर पति की ओर देखकर बोलीं, "बहू ने भेजा होगा बाजार।" और एक लम्बी सांस लेकर चुप हो रहीं।

गजाधर बाबू बैठकर चाय और नाश्ते का इन्तजार करते रहे। उन्हें अचानक ही गनेशी की याद आ गई। रोज सुबह, पैसेंजर आने से पहले वह गर्म-गर्म पूरियां और जलेबी बनाता था। गजाधर बाबू जब तक उठकर तैयार होते, उनके लिए जलेबियां और चाय लाकर रख देता था। चाय भी कितनी बढ़िया, कांच के ग्लास में ऊपर तक भरी लबालब, पूरे ढाई चम्मच चीनी, और गाढ़ी मलाई। पैसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुंचे, गनेशी ने चाय पहुंचाने में कभी देर नहीं की। क्या मजाल कि कभी उससे कुछ कहना पड़े।

पत्नी का शिकायत-भरा स्वर सुन उनके विचारों में व्याघात पहुंचा। वह

मकान बनवा लिया था, बड़े लड़के अमर और लड़की कान्ति की शादियां कर दी थीं, दो बच्चे ऊंची कक्षाओं में पढ़ रहे थे। गजाधर बाबू नौकरी के कारण प्रायः छोटे स्टेशनों पर रहे, और उनके बच्चे और पत्नी शहर में, जिससे पढ़ाई में बाधा न हो। गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी। जब परिवार साथ था, ड्यूटी से लौटकर बच्चों से हंसते-बोलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते—उन सबके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा। खाली क्षणों में उनसे घर में टिका न जाता। कवि प्रकृति के न होने पर भी, उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद रहतीं। दोपहर में, गरमी होने पर भी, दो बजे तक आग जलाए रहती और उनके स्टेशन से वापस आने पर गरम-गरम रोटियां सेंकती—उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा-सा कुछ और थाली में परोस देती, और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह, थके-हारे बाहर से आते, तो उनका आहट पा वह रसोई के द्वार पर निकल आती, और उनकी सलज्ज आंखें मुसकरा उठतीं। गजाधर बाबू को तब हर छोटी बात भी याद आती और वह उदास हो उठते···अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।

टोपी उतारकर गजाधर बाबू ने चारपाई पर रख दी, जूते खोलकर नीचे खिसका दिए, अन्दर से रह-रहकर कहकहों की आवाज़ आ रही थी, इतवार का दिन था और उनके सब बच्चे इकट्ठे होकर नाश्ता कर रहे थे। गजाधर बाबू के सूखे चेहरे पर स्निग्ध मुसकान आ गई। उसी तरह मुसकराते हुए, वह बिना खांसे अन्दर चले आए। उन्होंने देखा कि नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे शायद गत रात्रि की फिल्म में देखे गए किसी नृत्य की नकल कर रहा था, और बसन्ती हंस-हंसकर दुहरी हो रही थी। अमर की बहू को अपने तन-बदन, आंचल या घूंघट का कोई होश न था और वह उन्मुक्त रूप से हंस रही थी। गजाधर बाबू को देखते ही नरेन्द्र धप से बैठ गया और चाय का प्याला उठाकर मुंह से लगा लिया। बहू को होश आया और उसने झट से माथा ढक लिया, केवल बसन्ती का शरीर रह-रहकर हंसी दबाने के प्रयत्न में हिलता रहा।

गजाधर बाबू ने मुस्कराते हुए उन लोगों को देखा। फिर कहा, "क्यों नरेन्द्र,

क्या नकल हो रही थी ?" "कुछ नहीं बाबूजी।" नरेन्द्र ने सिटपिटाकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुण्ठित हो चुप हो गए, उससे उनके मन में थोड़ी-सी खिन्नता उपज आई। बैठते हुए बोले, "बसंती, चाय मुझे भी देना। तुम्हारी अम्मां की पूजा अभी चल रही है क्या ?" बसंती ने मां की कोठरी की ओर देखा, "अभी आती ही होंगी," और प्याले में उनके लिए चाय छानने लगी। बहू चुपचाप पहले ही चली गई थी, अब नरेन्द्र भी चाय का आखिरी घूंट पीकर उठ खड़ा हुआ, केवल बसन्ती, पिता के लिहाज में, चौके में बैठी मां की राह देखने लगी। गजाधर बाबू ने एक घूंट चाय पी, फिर कहा, "बिट्टी—चाय तो फीकी है।"

"लाइए, चीनी और डाल दूं।" बसन्ती बोली।

"रहने दो, तुम्हारी अम्मां जब आएंगी, तभी पी लूंगा।"

थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ में अर्घ्य का लोटा लिए निकलीं और अशुद्ध स्तुति कहते हुए तुलसी में डाल दिया। उन्हें देखते ही बसन्ती भी उठ गई। पत्नी ने आकर गजाधर बाबू को देखा और कहा, "अरे, आप अकेले बैठे हैं—यह सब कहां गए ?" गजाधर बाबू के मन में फांस-सी करक उठी, "अपने-अपने काम में लग गए हैं—आखिर बच्चे ही हैं।"

पत्नी आकर चौके में बैठ गईं—उन्होंने नाक-भौं चढ़ाकर चारों ओर जूठे बर्तनों को देखा। फिर कहा, "सारे में जूठे बर्तन पड़े हैं। इस घर में धरम-करम कुछ नहीं। पूजा करके सीधे चौके में घुसो।" फिर उन्होंने नौकर को पुकारा, जब उत्तर न मिला तो एक बार और उच्च स्वर में, फिर पति की ओर देखकर बोलीं, "बहू ने भेजा होगा बाजार।" और एक लम्बी सांस लेकर चुप हो रहीं।

गजाधर बाबू बैठकर चाय और नाश्ते का इन्तजार करते रहे। उन्हें अचानक ही गनेशी की याद आ गई। रोज सुबह, पैसेंजर आने से पहले वह गर्म-गर्म पूरियां और जलेबी बनाता था। गजाधर बाबू जब तक उठकर तैयार होते, उनके लिए जलेबियां और चाय लाकर रख देता था। चाय भी कितनी बढ़िया, कांच के ग्लास में ऊपर तक भरी लबालब, पूरे ढाई चम्मच चीनी, और गाढ़ी मलाई। पैसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुंचे, गनेशी ने चाय पहुंचाने में कभी देर नहीं की। क्या मजाल कि कभी उससे कुछ कहना पड़े।

पत्नी का शिकायत-भरा स्वर सुन उनके विचारों में व्याघात पहुंचा। वह

कह रही थीं, सारा दिन इसी खिच-खिच में निकल जाता है। इसी गिरस्थी का धन्धा पीटते-पीटते उमर बीत गई। कोई ज़रा हाथ भी नहीं बंटाता।

"बहू क्या किया करती हैं?" गजाधर बाबू ने पूछा।

"पड़ी रहती हैं। बसंती को तो फिर कहो कि कॉलेज जाना होता है।"

गजाधर बाबू ने जोश में आकर बसंती को आवाज़ दी। बसंती भाभी के कमरे से निकली तो गजाधर बाबू ने कहा, "बसन्ती, आज से शाम का खाना बनाने की ज़िम्मेवारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनाएंगी।"

बसन्ती मुंह लटकाकर बोली, "बाबूजी, पढ़ना भी तो होता है।"

गजाधर बाबू ने बड़े प्यार से समझाया, "तुम सवेरे पढ़ लिया करो। तुम्हारी मां बूढ़ी हुईं, उनके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची है। तुम हो, तुम्हारी भाभी हैं, दोनों को मिलकर काम में हाथ बंटाना चाहिए।"

बसन्ती चुप रह गई। उसके जाने के बाद, उसकी मां ने धीरे से कहा, "पढ़ने का तो बहाना है। कभी जी नहीं लगता, लगे कैसे? शीला से ही फ़ुरसत नहीं, बड़े-बड़े लड़के हैं उस घर में, हर वक्त वहां घुसा रहना, मुझे नहीं सुहाता। मना करूं तो सुनती नहीं।"

नाश्ता कर, गजाधर बाबू बैठक में चले गए। घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबन्ध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी गई थी—गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े-पड़े, कभी-कभी अनायास ही, इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आती उन रेलगाड़ियों की, जो आतीं और थोड़ी देर रुककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जातीं।

घर छोटा होने के कारण बैठक में ही अब अपना प्रबन्ध किया था। उनकी पत्नी के पास अन्दर एक छोटा कमरा अवश्य था, पर उसमें एक ओर अचारों के मर्तबान, दाल, चावल के कनस्टर और घी के डिब्बे से घिरा था—दूसरी ओर पुरानी रज़ाइयां, दरियों में लिपटी और रस्सी से बंधी रखी थीं, उसके पास एक बड़े-से टीन के बक्स में घर-भर के गरम कपड़े थे। बीच में एक अलगनी बंधी हुई थी, जिसपर प्रायः बसन्ती के कपड़े, लापरवाही से पड़े रहते थे। वह भरसक उस कमरे में नहीं जाते थे। घर का दूसरा कमरा अमर और उसकी बहू के पास था।

सरा कमरा, जो सामने की ओर था, बैठक था। गजाधर बाबू के आने से पहले समें अमर की ससुराल से आया बेंत की तीन कुर्सियों का सेट पड़ा था, कुर्सियों र नीली गद्दियाँ और बहू के हाथों के कढ़े कुशन थे।

जब कभी उनकी पत्नी को कोई लम्बी शिकायत करनी होती, तो अपनी चटाई ठक में डाल पड़ जाती थीं। तो वह एक दिन चटाई लेकर आ गईं। गजाधर बाबू घर-गृहस्थी की बातें छेड़ीं, वह घर का रवैया देख रहे थे। बहुत हलके-से न्होंने कहा कि अब हाथ में पैसा कम रहेगा, कुछ खर्च कम होना चाहिए।

"सभी खर्च तो वाजिब-वाजिब हैं, किसका पेट काटूं? यही जोड़-गांठ करते-रते बूढ़ी हो गई, न मन का पहना, न ओढ़ा।"

गजाधर बाबू ने आहत, विस्मित दृष्टि से पत्नी को देखा। उनसे अपनी हैसि-त छिपी न थी। उनकी पत्नी तंगी का अनुभव कर उसका उल्लेख करतीं, यह वाभाविक था, लेकिन उनमें सहानुभूति का पूर्ण अभाव गजाधर बाबू को बहुत टका। उनसे यदि राय-बात की जाती कि प्रबन्ध कैसे हो, तो उन्हें चिन्ता कम, तोष अधिक होता। लेकिन उनसे तो केवल शिकायत की जाती थी जैसे परिवार ी सब परेशानियों के लिए वही जिम्मेदार थे।

"तुम्हें किस बात की कमी है अमर की मां—घर में बहू है, लड़के-बच्चे हैं, सर्फ रुपये से ही आदमी अमीर नहीं होता।" गजाधर बाबू ने कहा और कहने साथ ही अनुभव किया, यह उनकी आंतरिक अभिव्यक्ति थी ऐसी कि उनकी त्नी नहीं समझ सकतीं। "हां, बड़ा सुख है न बहू से। आज रसोई करने गई है, खो क्या होता है," कहकर पत्नी ने आंखें मूदीं, और सो गईं। गजाधर बाबू ैठे हुए पत्नी को देखते रह गए—यही थी क्या उनकी पत्नी जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था? न्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी गह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितांत अपरिचिता है। ाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी-सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग हा था, चेहरा श्रीहीन और रूखा था। गजाधर बाबू देर तक निस्संग दृष्टि से त्नी को देखते रहे और फिर लेटकर छत की ओर ताकने लगे।

अन्दर कुछ गिरा और उनकी पत्नी हड़बड़ाकर उठ बैठीं, "लो बिल्ली ने ... रा दिया शायद," और वह अंदर भागीं, थोड़ी देर में लौटकर आईं, तो उन

मुंह फूला हुआ था, "देखो बहू को, चौका खुला छोड़ आई, बिल्ली ने दाल की पतीली गिरा दी। सभी तो खाने को हैं, अब क्या खिलाऊंगी ?" वह सांस लेने को रुकीं और बोलीं, "एक तरकारी और चार परांठे बनाने में सारा डिब्बा घी उंड़ेलकर रख दिया। ज़रा-सा दर्द नहीं है, कमाने वाला हाड़ तोड़े और यहां चीजें लुटें। मुझे तो मालूम था कि यह सब काम किसीके बस का नहीं है ?"

गजाधर बाबू को लगा कि पत्नी कुछ और बोलेंगी तो उनके कान झनझना उठेंगे। ओंठ भींच, करवट लेकर उन्होंने पत्नी की ओर पीठ कर ली।

रात का भोजन बसंती ने जान-बूझकर ऐसा बनाया था कि कौर तक निगला न जा सके। गजाधर बाबू चुपचाप खाकर उठ गए, पर नरेन्द्र थाली सरकाकर उठ खड़ा हुआ और बोला, "मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता।"

बसन्ती तुनककर बोली, "तो न खाओ, कौन तुम्हारी खुशामद करता है।"

"तुमसे खाना बनाने को कहा किसने था ?" नरेन्द्र चिल्लाया।

"बाबूजी ने।"

"बाबूजी को बैठे-बैठे यही सूझता है।"

बसन्ती को उठाकर मां ने नरेन्द्र को मनाया और अपने हाथ से कुछ बनाकर खिलाया। गजाधर बाबू ने बाद में पत्नी से कहा, "इतनी बड़ी लड़की हो गई और उसे खाना बनाने तक का शऊर नहीं आया।" "अरे आता सब कुछ है, करना नहीं चाहती," पत्नी ने उत्तर दिया। अगली शाम मां को रसोई में देख कपड़े बदलकर बसन्ती बाहर आई तो बैठक से गजाधर बाबू ने टोक दिया, "कहां जा रही हो ?"

"पड़ोस में, शीला के घर।" बसन्ती ने कहा।

"कोई जरूरत नहीं है, अन्दर जाकर पढ़ो।" गजाधर बाबू ने कड़े स्वर में कहा। कुछ देर अनिश्चित खड़े रहकर बसन्ती अन्दर चली गई। गजाधर बाबू शाम को रोज टहलने चले जाते थे, लौटकर आए तो पत्नी ने कहा, "क्या कह दिया बसन्ती से ? शाम से मुंह लपेटे पड़ी है। खाना भी नहीं खाया।"

गजाधर बाबू खिन्न हो आए। पत्नी की बात का उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि बसन्ती की शादी जल्दी ही कर देनी

है। उस दिन के बाद बसन्ती पिता से बची-बची रहने लगी। जाना होता तो पिछ-वाड़े से जाती। गजाधर बाबू ने दो-एक बार पत्नी से पूछा तो उत्तर मिला, "रूठी हुई है।" गजाधर बाबू को और रोष हुआ। लड़की के इतने मिज़ाज, जाने को रोक दिया तो पिता से बोलेगी नहीं। फिर उनकी पत्नी ने ही सूचना दी कि अमर अलग रहने की सोच रहा है।

"क्यों?" गजाधर बाबू ने चकित होकर पूछा।

पत्नी ने साफ़-साफ़ उत्तर नहीं दिया। अमर और उसकी बहू की शिकायतें बहुत थीं। उनका कहना था कि गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने-जाने वाला हो तो कहीं बैठाने की जगह नहीं। अमर को अब भी वह छोटा-सा समझते थे, और मौके-बेमौके टोक देते थे। बहू को काम करना पड़ता था और सास जब-तब फूहड़पन पर ताने देती रहती थीं। "हमारे आने के पहले भी कभी ऐसी बात हुई थी?" गजाधर बाबू ने पूछा। पत्नी ने सिर हिलाकर बताया कि नहीं। पहले अमर घर का मालिक बनकर रहता था—बहू को कोई रोक-टोक न थी, अमर के दोस्तों का प्रायः यहीं अड्डा जमा रहता था और अन्दर से नाश्ता-चाय तैयार होकर आता रहता था। बसन्ती को भी वही अच्छा लगता था।

गजाधर बाबू ने बहुत धीरे से कहा, "अमर से कहो, जल्दबाज़ी की कोई ज़रूरत नहीं है।"

अगले दिन वह सुबह घूमकर लौटे तो उन्होंने पाया कि बैठक में उनकी चार-पाई नहीं है। अन्दर आकर पूछने वाले ही थे कि उनकी दृष्टि रसोई के अन्दर बैठी पत्नी पर पड़ी। उन्होंने यह कहने को मुँह खोला कि बहू कहाँ है; पर कुछ याद कर चुप हो गए। पत्नी की कोठरी में झाँका तो अचार, रजाइयों और कन-स्टरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पाई। गजाधर बाबू ने कोट उतारा और कहीं टाँगने को दीवार पर नज़र दौड़ाई। फिर उसे मोड़कर अलगनी के कुछ कपड़े खिसकाकर, एक किनारे टाँग दिया। कुछ खाए बिना ही अपनी चारपाई पर लेट गए। कुछ भी हो, तन आखिरकार बूढ़ा ही था। सुबह-शाम कुछ दूर टहलने अवश्य चले जाते, पर आते-आते थक उठते थे। गजाधर बाबू को अपना बड़ा-सा, खुला हुआ क्वार्टर याद आ गया। निश्चिन्त जीवन, सुबह पैसेंजर ट्रेन आने पर स्टेशन की चहल-पहल, चिरपरिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खट्-खट्, जो उनके लिए मधुर संगीत की तरह था। तूफ़ान और डाक गाड़ी

के इन्जनों की चिग्घाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजीमल के मिल के कुछ लोग कभी-कभी पास आ बैठते, वही उनका दायरा था, वही उनके साथी। वह जीवन अब उन्हें एक खोई निधि-सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह ज़िन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूंद भी न मिली।

लेटे हुए वह घर के अन्दर से आते विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास की छोटी-सी झड़प, बालटी पर खुले नल की आवाज़, रसोई के बरतनों की खटपट और उसीमें दो गौरैयों का वार्तालाप—और अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यहीं है, तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई, तो वहां चले जाएंगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेशी की तरह पड़े रहेंगे···और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले। नरेन्द्र मांगने आया तो बिना कारण पूछे उसे रुपये दे दिए—बसन्ती काफी अंधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस में रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा—पर उन्हें सबसे बड़ा गम यह था कि उनकी पत्नी ने भी उनमें कुछ परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया। वह मन-ही-मन कितना भार ढो रहे हैं इससे वह अनजान ही बनी रहीं। बल्कि उन्हें पति के घर के मामले में हस्तक्षेप न करने के कारण शान्ति ही थी। कभी-कभी कह भी उठतीं, "ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए हैं, हमारा जो कर्तव्य था, कर रहे हैं। पढ़ा रहे हैं, शादी कर देंगे।"

गजाधर बाबू ने आहत दृष्टि से पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी मांग में सिन्दूर डालने की अधिकारिणी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्तव्यों से छुट्टी पा जाती हैं। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई हैं कि अब वही उनकी सम्पूर्ण दुनिया बन गई है। गजाधर बाबू उनके जीवन के केन्द्र नहीं हो सकते, उन्हें तो अब उनकी शादी के लिए भी उत्साह बुझ गया। किसी बात में हस्तक्षेप न करने के लिए निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी। उनकी सारी खुशी एक गहरी

उदासीनता में डूब गई।

इतने सब निश्चयों के बावजूद भी गजाधर बाबू एक दिन बीच में दखल दे बैठे। पत्नी स्वभावानुसार नौकर की शिकायत कर रही थीं, "कितना कामचोर है, बाजार की हर चीज में पैसा बनाता है, खाने बैठता है, तो खाता ही चला जाता है।" गजाधर बाबू को बराबर यह महसूस होता रहता था कि उनके घर का रहन-सहन और खर्च उनकी हैसियत से कहीं ज्यादा है। पत्नी की बात सुनकर लगा कि नौकर का खर्च बिलकुल बेकार है; छोटा-मोटा काम है, घर में तीन मर्द हैं, कोई-न-कोई कर ही देगा; उन्होंने उसी दिन नौकर का हिसाब कर दिया। अमर दफ्तर से आया तो नौकर को पुकारने लगा। अमर की बहू बोली, "बाबूजी ने नौकर छुड़ा दिया है।"

"क्यों?"

"कहते हैं खर्च बहुत है।"

यह वार्तालाप बहुत सीधा-सा था, पर जिस टोन में बहू बोली, गजाधर बाबू को खटक गया। उस दिन जी भारी होने के कारण गजाधर बाबू टहलने नहीं गए थे। आलस्य में, उठकर बत्ती भी नहीं जलाई—इस बात से बेखबर नरेन्द्र माँ से कहने लगा, "अम्मा, तुम बाबूजी से कहती क्यों नहीं? बैठे-बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबूजी यह समझें कि मैं साइकिल पर गेहूँ रख आटा पिसाने जाऊँगा तो मुझसे यह नहीं होगा।" "हाँ अम्मा"—बसन्ती का स्वर था, "मैं कालिज भी जाऊँ और लौटकर घर में झाड़ू भी लगाऊँ, यह मेरे बस की बात नहीं है।"

"बूढ़े आदमी हैं," अमर भुनभुनाया, "चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं!" पत्नी ने बड़े व्यंग्य से कहा, "और कुछ नहीं सूझा तो तुम्हारी बहू को ही चौके में भेज दिया। वह गई तो पन्द्रह दिन का राशन पाँच दिन में बनाकर रख दिया।" बहू कुछ कहे, इससे पहले वह चौके में घुस गईं। कुछ देर में अपनी कोठरी में आईं और बिजली जलाई तो गजाधर बाबू को लेटे देख बड़ी सिटपिटाईं। गजाधर बाबू की मुखमुद्रा से वह उनके भावों का अनुमान न लगा सकीं। वह चुप, आँखें बन्द किए लेटे रहे।

गजाधर बाबू चिट्ठी हाथ में लिए अंदर आए और पत्नी को पुकारा। वह भीगे हाथ लिए निकलीं और आंचल से पोंछती हुई पास आ खड़ी हुईं। गजाधर बाबू ने बिना किसी भूमिका के कहा, "मुझे सेठ रामजीमल की चीनी-मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएं, वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने मना कर दिया था।" फिर कुछ रुककर, जैसे बुझी हुई आग में एक चिनगारी चमक उठे, उन्होंने धीमे स्वर में कहा, "मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद, अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूंगा। खैर, परसों जाना है। तुम भी चलोगी?"

"मैं?" पत्नी ने सकपकाकर कहा, "मैं चलूंगी तो यहां का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की..."

बात बीच में काट गजाधर बाबू ने थके, हताश स्वर में कहा, "ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था।" और गहरे मौन में डूब गए।

नरेन्द्र ने बड़ी तत्परता से बिस्तर बांधा और रिक्शा बुला लाया। गजाधर बाबू का टिन का बक्स और पतला-सा बिस्तर उसपर रख दिया गया। नाश्ते के लिए लड्डू और मठरी की डलिया हाथ में लिए गजाधर बाबू रिक्शे पर बैठ गए। एक दृष्टि उन्होंने अपने परिवार पर डाली और फिर दूसरी ओर देखने लगे और रिक्शा चल पड़ा। उनके जाने के बाद सब अन्दर लौट आए। बहू ने अमर से पूछा, "सिनेमा ले चलिएगा न?" बसन्ती ने उछलकर कहा, "भइया, हमें भी।"

गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गईं। बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में लाईं और कनस्टरों के पास रख दिया, फिर बाहर आकर कहा, "अरे नरेन्द्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।"

टूटा दर्पण

अमृता ने दोनों किताबें भूरे कागज़ में लपेटकर बांध दीं। डोरी में गांठ लगाते हुए उसके हाथ ठिठक गए और उसकी दृष्टि खाली कमरे को पार कर, दूर देख उठी। सघन अशोक वृक्षों की टहनियां कांप रही थीं और हवा के हर झोंके पर दो-एक पीले कनेर नीचे गिर जाते थे। बाहर बैठा हुआ बढ़ई लकड़ी की पेटियों में, सधे हुए हाथों से आखिरी कील ठोंक रहा था। ममी शायद इन पेटियों को उस कमरे में रखवा दें, जहां फालतू सामान भरा हुआ है। धीरे-धीरे सीलन उनमें भिदती जाएगी और बन्द किताबों के पृष्ठ अपने-आप पीले पड़ते जाएंगे। उस कमरे में विगत वैभव के कितने ही प्रतीक थे। बाबा के हाथ का हौदा, महफ़िल में बिछने वाली दरियां, रंगमहल के झाड़-फानूस, उसके साथ आदित्य का टूटा स्टेथेस्कोप, और अब—अमृता की किताबें।

अमृता ने कागज़ खोलकर एक बार फिर उन किताबों को उलटा-पलटा। कितनी ही कड़वी-मीठी स्मृतियां उनमें सम्बन्धित हैं।

खिड़किया का सारे कुशन, कार्पेट, इकट्ठे कर उनपर बैठ जाना, मति का पैर फैलाकर सैटी पर लेटना और खिड़की के शीशे पकड़कर बेम्बी का मीरा की गोद में उछलना—अब ये घटनाएं स्मृति में अंकित होकर रह जाएंगी। अवकाश के क्षणों में अमृता जब कभी यह याद करेगी तो उसे ये चेहरे उतने ही धूमिल-से लगेंगे जितना धूमिल आज कुंवर का चेहरा है। पिछले कई दिनों से उसने बार-बार कुंवर की मुखाकृति याद करनी चाही है; पर वह पकड़ में न आकर अलग ही रही है, मात्र छाया।

और कल का दिन।

सुबह-सुबह ही सत्यभामा जी का फोन आया था। हंसकर बोली थीं; "तुम्हारा ही काम करने जा रही हूं। परसों शाम के लिए तुम्हारे लिए फूलों के आभूषण बनवाने हैं। इन लोगों के यहां नई बहू को पहली रात फूलों के गहने

पहनने का चलन है।"

अमृता ने रिसीवर रख दिया। उसे लग रहा था कि सत्यभामा किसी और की वात कर रही है। यह भीड़-भाड़ और चहल-पहल किसी और के निमित्त है। अमृता तो अलग-थलग है। वह तो स्मृतियों की गहराइयों में डूबकर रह गई है, संवेदनाओं की गोधूलि में भटक रही है···

सत्यभामा जी ने पार्टी दी थी, कोई खास वात न थी, बस ऐसे ही, जिसमें ऊवे हुए पुरुषों ने बिजनेस, व्रिज और क्लब की वात की थी, सजी-संवरी स्त्रियों ने एक-दूसरे की साड़ियों के दाम मांपने की चेष्टा की थी, छिटपुट वातें और अनुपस्थित लोगों की निन्दा की थी। अमृता ममी के चलने की प्रतीक्षा में थी। सत्यभामा जी ने आकर कहा, "यह कुंवर हैं मीतू—मेरे देवर लगते हैं।"

अमृता ने विना किसी रुचि के कुंवर के नमस्कार का जवाव दे दिया। नये व्यक्तियों से परिचय उसे वड़ा ही उवाने वाला लगता था; और उतने ही उवाने वाले वे प्रारंभिक प्रश्न—

अमृता को लगातार उद्यान की ओर देखते हुए कुंवर ने पूछा: "आप गार्डेनिंग में रुचि रखती हैं?"

"जी नहीं!" उनसे भी कुछ अपेक्षित है, यह अनुभव कर अमृता ने पूछा: "आप?"

"थोड़ा वहुत," कुंवर ने उत्तर दिया। अमृता ने सोचा कि उसे बताए कि वह आजकल एक नई भाषा पढ़ रही है। पर यति के ध्यान से उसके अन्दर दीप-सा जल उठा। तभी ममी आईं। कुंवर को अमृता के पास खड़ा देख वह मुस्कराईं। और रास्ते-भर कुछ सोच-सोचकर मुस्कराती रहीं।

उसके वाद कई वार, कुंवर दिल्ली आया और हर वार सत्यभामा जी ने अमृता को वुलाया, पर वह नहीं गई।

और कल का दिन और उसके वाद का दिन और एक के वाद कितने ही दिन···जीवन—

कुंवर का चेहरा यदि स्पष्ट भी होता तो क्या होता—कुंवर को अच्छी तरह जानती होती तव भी उसके अन्दर यही डूवती-सी भावना होती। क्योंकि किताबों की पेटियों में कीलें ठुकतीं और विविया, यति, मीरा और वेम्वी सभी को छोड़ना पड़ता।

विजनर रोड की कोठी में इस समय बड़ी चहल-पहल होगी। डैडी ड्रेसिंग गाउन पहने, हाथ में सिगरेट का टिन पकड़े, इन्तज़ाम कराते घूम रहे होंगे। बल्लीमारां वाली मौसी सपरिवार सुबह से ही आ गई होंगी और ममी से उनकी चपचप प्रारम्भ हो गई होगी। उसी भीड़-भाड़ में सुन्दरनगर वाली बुआ का ड्राइवर रश्मन से फ्लर्ट कर रहा होगा। सम्बन्धियों के मन में बड़ा उत्साह है अमृता के विवाह का, और इस अवसर पर कई बरस से अलग रहते ममी और डैडी भी इकट्ठे हो गए हैं। दोनों को एक-दूसरे पर विश्वास नहीं, फिर भी राय पूछे बिना काम नहीं चलता। ममी डैडी का अधिक से अधिक धन खर्च करवाने पर तुली हुई हैं। डैडी के आनाकानी करने पर वह खानदान में हुई अन्य शादियों का हवाला देने लगती हैं। सब अपने में व्यस्त हैं और सत्यभामा जी अब फिरनी की तरह दोनों परिवारों के बीच नाच रही हैं। विवाह में सहूलियत हो इसलिए कुंवर के परिवार वाले भी दिल्ली आ गए हैं और इसलिए सत्यभामाजी की पोजीशन बड़ी महत्वपूर्ण हो गई है। कुंवर उनका देवर, अमृता उनके बिजनेस पार्टनर की लड़की। बीच-बीच में ममी से भी गुमगुम : "अरे घबराती क्यों हो, इतना मिलेगा अमृता को कि देखने वालों की आंखें चौंधिया जाएंगी।"

और अमृता को अपनी कॉटेज याद आती है। वह जाड़े की रातें जबकि हलके पीले सेट में रश्मन सबको कॉफी देती थी, खिड़की के पास बैठी मीरा बेन्की की थामे अमृता और यति को कौतुक-भरी आंखों से देखती हुई। कुशन को तोड़-मरोड़कर यति सिर के नीचे लगाकर सेटी पर लेट जाता था। उसके पैर बाहर निकले रहते थे, और उसी तरह बड़े आराम से लेटे-लेटे किताब पढ़कर अमृता को शब्दों का उच्चारण और अर्थ बताता जाता और वह कापी में लिखती जाती। बिबिया मौका पाकर बुक-शेल्फ से किताबें निकालकर भूमि पर पटकने लगती।

"नहीं बिबिया," अमृता के मना करने पर वह दुष्टतापूर्वक हंसती और फिर मैंटलपीस खींच लेती और मेज पर रखा मनी-प्लान्ट का तांबे का गमला नीचे आ गिरता।

"मीरा, तुम बिबिया को जरा भी नहीं देख सकती? देखो कितना उत्पात करती है।" यति चीखता और जब तक अमृता उठे बिबिया भागकर किवाड़ के पीछे छिप जाती।

अमृता ने उखड़ आए मनी-प्लाण्ट को फिर से मिट्टी में खोंसा और मेज़पोश बिछाकर गमला रखा। अमृता कितनी नफासतपसन्द है। उसकी हर वस्तु अपने स्थान पर सजी रखी रहती। बिबिया के उत्पात से उसके मन में खीझ अवश्य होती होगी, यह जानकर यति ने कहा :

"इस लड़की ने न जाने किसकी विध्वंसात्मक प्रवृत्ति पाई है।"

"तुम्हारी और किसकी ?" मीरा ने कुढ़कर कहा।

"बस, बस।" अमृता ने बीच-बचाव किया और मीरा बेबी को ऊंचा-ऊंचा उछालने लगी।

"पटक दो न ज़मीन पर अगर इतना गुस्सा आ रहा है।"

"क्या है यति ? चुप रहो न ! बच्ची है, शैतानी तो करेगी ही। उसमें मीरा पर क्यों बिगड़ रहे हो ?" अमृता ने कहा।

पर गृह-युद्ध का सूत्रपात हो जाता। आगे-आगे सोते बेम्बी को कन्धे से लगाए लम्बे कदम रखता हुआ यति और पीछे मुंह फुलाए मीरा। विमनस्क अमृता खिड़की से उन्हें जाते देखती और एक उसांस ले वापस लौट आती। ऐसे क्षणों में उसका मस्तिष्क और पीछे चला जाता—चार वर्ष पहले जब मीरा और यतीन्द्र का विवाह नहीं हुआ था।

इस आयु में ममी और डैडी के अलग हो जाने से अमृता के दिल पर खरोंच-सी पड़ गई, अमृता का जब तक विवाह न होगा तब तक वे वैधानिक रूप से अलग न होंगे; यह निश्चय उन्होंने अमृता के कारण ही लिया था। उन दोनों में मतभेद तो सदा रहा, पर उनके अलग हो जाने की कल्पना उसने कभी न की थी। जवान डॉक्टर-पुत्र की मृत्यु के बाद से ममी टूट-सी गई थीं। डैडी अब भी आकर्षक थे और हमेशा चुनकर खूबसूरत सेक्रेटरी रखते थे। यह बात नहीं कि ममी में कोई दोष था; फिर भी···और अमृता अपने को दोषी ठहराती। यदि वह न होती तो ममी पहले ही डैडी से अलग हो जातीं और जीवन के छिन्न सूत्रों को उसी प्रकार संवार लेतीं। अब तो उनका जीवन हर प्रकार से रिक्त हो गया था और अमृता के जीवन में अचानक दरार पड़ गई। उसने उसके विश्वास को तोड़ दिया।

"अमृता, तुम शादी कर लो।" मीरा ने एक बार कहा था।

"ऐसे सम्बन्धों पर मेरी आस्था नहीं रही मीरा! विवाह बहुत कुछ मांगता है, मुझमें न कोई चाव बचा है, न अरमान। ऐसे ही रहती आई हूं—ऐसे ही रहूंगी। अब इस आयु में मुझसे दुल्हन नहीं बना जाएगा।" अमृता थोड़ा-सा हंसी।

"अपने को ही देखो—क्या तुम्हारे वे रुपहले सुनहले स्वप्न बदरंग नहीं हो गए! बिबिया, बेम्बी, नई-नई परेशानियां, गिरता हुआ स्वास्थ्य और तुम्हारे ही शब्द में यति-सा कुतर्की पति।"

मीरा एक क्षण को चुप हो गई।

"तू जिन्दगी एक झूठे दर्पण में देख रही है, अमृता। यह आवश्यक नहीं कि जो ममी और डैडी में हुआ, वही तेरे साथ हो। और रहे मेरे स्वप्न, मेरा ही दोष था। मैंने जिन्दगी को बहुत रोमाण्टिक दृष्टि से देखा था। तुझे यति की तरह के व्यक्ति से विवाह करने की आवश्यकता नहीं। किसी ऐसे पुरुष से कर, जो तुझे धन-दौलत और प्रतिष्ठा दे सके। जैसे वह हैं, सत्यभामा के कुंवर।"

"लोहे के उस कारखाने में मैं घुटकर मर जाऊंगी।"

"धन-दौलत में कोई घुटकर नहीं मरता।" मीरा ने बेम्बी के कपड़े तह करते हुए कहा।

अमृता ने बांहों से घुटने बांध लिए, और कहा : "सच बात तो यह है मीरा कि अगर यति-सा कोई पुरुष मुझे मिले तो मैं झट से शादी कर लूं।"

मीरा ने रुककर देखा कि अमृता की बात में कितना परिहास है, पर उसके मुख से वह कुछ अन्दाज न लगा पाई। बात को परिहास के रूप में ही लेते हुए मीरा ने कहा : "बड़ी आई यति वाली। यति के साथ चौबीसों घण्टे रहना पड़े तो पता चले।"

मां से डांट खाकर बिबिया अमृता के पास भागती है, उसकी गोद में दुबक जाती है। ईवनिंग क्लासेज से थका यति अमृता के कॉटेज में चैन पाता है। दो कमरों के घर में हर जगह बेम्बी और बिबिया की चीज बिखरी रहती है। पीछे बरामदे में बेम्बी के भीगे महकते नैपकिन। गुसलखाने में बच्चों का बाथटब। कमरे के कोने में बच्चों की पैरेम्बुलेटर। बिना बाल संवारे, बिना कपड़े बदले,

मीरा किसी न किसी काम में व्यस्त रहती है। कहीं चलने के समय अस्सी रुपये की साड़ी के साथ मीरा छींट का बिना आयरन किया हुआ ब्लाउज पहन लेगी। एक गाल पर पाउडर का धब्बा, बिन्दी टेढ़ी और लिपस्टिक बेपरवाही से लगाए जाने के कारण ओंठों की प्राकृतिक रेखा के बाहर फैली हुई। यति के माथे पर शिकन पड़ जाएगी और उसके ओंठ मिच जाएंगे। अमृता भी यह सब देखती है। मीरा को टोकती भी है : "अरे अब मैं दो बच्चों की मां हुई। इन सब बातों की मुझे फुरसत नहीं है।" मीरा का उत्तर होता है। अकारण मार खाई बिबिया की बांहें जब उसके गले में होती हैं, यति जब थकी और सिनिकल बात करने लगता है तो अमृता को डर-सा लगता है। क्या मीरा नहीं समझती कि बिबिया कभी बेम्बी को बड़ी बहन का स्नेह न दे सकेगी कि यति शायद कहीं भटक जाए—बिबिया को अमृता दुलार-पुचकार लेती है, पर यति किसी दिन अकस्मात् भटक जाएगा—दूर हो जाएगा—तब मीरा सीना पीट-पीटकर पुरुष जाति को बुरा-भला कहेगी, अपने वह सब त्याग गिनाएगी जोकि उसने यति के लिए किए थे।

और विवाह के एक दिन पहले अमृता को कुछ वर्ष पहले की एक रात याद आ गई। वह मीरा के साथ रहती थी और मीरा की शादी नहीं हुई थी। मीरा के कमरे में यति का बड़ा-सा फोटो रक्खा था। सहज और हंसमुख प्रकृतिवाला यति, जिसकी आंखों में गरमाई थी और बोलने में अजीब-सी अलसता, लम्बा और दुबला, पर साथ ही अपूर्व शक्ति का परिचय देता-सा।

रुकमन ने मीरा और अमृता की चारपाइयां खुले में बिछाई थीं। बिस्तर ओस से गीले थे। अमृता को मीरा के चेहरे का वह भाव नहीं भूलता। मीरा ने कहा : "हमने निश्चय कर लिया है कि हम इन्हीं छुट्टियों में विवाह कर लेंगे।"

मुलायम तकिये में कोहनी गड़ाए लेटी अमृता मीरा को देखती रही। आंगन के पीछे दीवार की लता सफेद और लाल फूलों के भार से झुक गई थी, और उनकी सुगन्ध चारों ओर मंडरा रही थी।

"यति का तो कोई भी नहीं। बड़ी बहन ने पाल-पोसकर बड़ा किया। मेरे पेयरेंट्स यति को पसन्द नहीं करते। वे कहते हैं कि हमारी बैक-ग्राउण्ड भिन्न है। मैंने कभी रुपये की परवाह नहीं की, घर चलाना मुझे नहीं आता। फिर फादर कहते हैं कि विदेशी भाषाएं पढ़ाने वाले अध्यापक के लिए आगे क्या चान्स है! असल में यति जब फ्रान्स से लौटा, तो विभाग में कोई जगह न थी। फ्रेंच पढ़ाने

की पोस्ट थी, ग्रेड एक ही था, यति ने वही स्वीकार कर ली। मीरा के चेहरे का सांवलापन चांदनी में घुलकर बड़ा लुभावना लगने लगा। ढीले बालों की चोटी का सिरा खोलते-गूंथते मीरा ने कहा :

"मुझे तो अमृता, कभी-कभी बड़ा डर लगता है।" अमृता को लगा कि इस तरह बैठे-बैठे वह थक गई। वह लेट गई और खुली बांहों पर चादर के भीगे ठंडेपन से रोएं उठ आए।

मीरा सो गई, पर अमृता देर तक जागती रही। यति, मीरा, डैडी और ममी —और वह कल्पना-मूर्ति जो उसने बचपन से मंजोई थी। अचानक ही वह स्पष्ट हो गई और उन आंखों की गरमाई बड़ी पहचानी-पहचानी-सी लगने लगी।

अमृता को उपहार में क्या दिया जाए इसपर मीरा और यति में बहुत बहस हुई थी। बिनिया के रिबन से खेलती अमृता ने उस बहस में कोई हिस्सा नहीं लिया। मीरा उसे प्रेशर-कुकर देना चाहती थी पर यति का कहना था कि वह ऐसी अनरोमैण्टिक चीज़ नहीं देने देगा।

"यह लड़की स्वयं बड़ी अनरोमैण्टिक है, नहीं तो जिसे केवल एक बार पार्टी में देखा, उससे विवाह करने को तैयार हो जाती? बड़ी भोली बनती है, बड़ी आज्ञाकारिणी, जो डैडी की इच्छा हो करें। डैडी किसी साधारण-से पुरुष से शादी ठहराते तब हम देखते कि यह कैसे करती?" मीरा के मन में अमृता के प्रति बड़ा आक्रोश था।

"अच्छा तो है, एकाध पंखा, साईकिल और अलमारी वग़ैरा हमें भी मिल जाएगी।" यति ने हंसकर कहा, पर उसकी आंखों में खोयापन-सा था। कुछ परेशानी, कुछ उलझन। अमृता ने एकाएक विवाह की स्वीकृति कैसे दे दी? यह बात यति और मीरा के लिए पहेली-सी बन गई थी। और अमृता कुछ हताश, कुछ खोई हुई-सी थी। उसे यही मलाल था कि यति भी उसके मन की गांठ नहीं पकड़ सका। कुंवर से विवाह की स्वीकृति देकर उसने अपने को पूर्णरूप से अदृष्य पर छोड़ दिया था, और उसकी मनःस्थिति ऐसे प्राणी-सी थी जोकि अपनी नौका में धीरे-धीरे पानी आता देख रहा हो और फिर भी चुपचाप बैठा हो क्योंकि उसे यह अच्छी तरह पता है कि इससे लड़ना बेकार है। विवाह में क्या उपहार मिले

यति।" उसकी उंगली में खारे आंसू थे, यति के आंसू।

"यति, तुम इतने बड़े, इतने क्षमतावान् होकर ऐसा आचरण कर रहे हो!"

अमृता समझ नहीं रही थी कि वह क्या कह रही थी। अगर बिबिया होती तो उसे पुचकारकर, चुमकारकर मना लिया जाता। अमृता की दोनों हथेलियां यति के गालों पर टिकी थीं, और वह समझाते हुए उससे कुछ कहती जा रही थी। उसकी सांस गले में फंस रही थी और शरीर में बड़ी विचित्र-सी बेकली समाई जा रही थी।

यति थका-हारा-सा उठकर चल दिया। अमृता उसके पीछे-पीछे द्वार तक गई और फिर जाते हुए यति की लम्बी परछाईं देखती रही। अगली शाम जब यति उसे पढ़ाने आया तो दोनों में से किसीने गत रात्रि का उल्लेख नहीं किया। पर दोनों ही एक अननुभूत संवेदना के साझीदार हो गए थे, और इसी कारण एक-दूसरे के पहले से कहीं अधिक निकट।

अमृता के कई पत्रों के जाने के बाद मीरा लौटी। अमृता उसे स्टेशन लेने गई थी। मीरा गई थी बड़े गर्व से, लौटी वह पराजिता-सी, बहुत विनीत और उदास। बिबिया अमृता से लिपट गई और टैक्सी में लौटते हुए अमृता सोचे हुए भर्त्सना के शब्दों में से कुछ भी न कह सकी।

"यति, बड़े खोए-खोए-से रहे," अमृता ने कहा। मीरा चुप रही।

उस रात बिबिया अमृता के पास ही सो गई, और यति सदा की तरह, अमृता को फ्रेंच पढ़ाने नहीं आया। वह क्लासेज़ के बाद ही सिनेमा चला गया और लौटा तब तक देर हो गई थी, सोयी बिबिया को गोद में लेकर अमृता पहुंचाने गई। कुछ गर्मी-सी होने के कारण सामने का द्वार खुला था। अन्दर कमरे में मीरा के सिरहाने टेबिल लैम्प जल रहा था और मीरा की चारपाई पर यति बैठा था। अमृता पर्दे के पीछे ही ठिठककर रुक गई। रोशनी लैम्प के कोट और मीरा के मुख पर पड़ रही थी। जैसे वह चांदनी-सी थी जिसमें मीरा के चेहरे का उदास सांवलापन घुलकर निखर आया था। अपने शरीर का भार बायें हाथ पर टेक यति बैठा था और दाहिने हाथ की उंगलियों से धीरे-धीरे कभी मीरा की मुलायम [ ] कभी उसका माथा, कभी ओठ छू रहा था।

कैसी साड़ियां खरीदी जाएं, क्या दिया जाए, यह उसने पूर्णरूप से औरों पर छोड़ दिया था। उसके मन में एक छिपी हुई आशा थी कि शायद यति समझे।

"ऐसे कब तक चलेगा?" अमृता ने यति से पूछा।

"क्या," यति खिड़की के बाहर देख रहा था, मीरा बच्चों को लेकर अपने पिता के पास चली गई थी और अमृता को बिबिया की बहुत याद आ रही थी।

"यही, तुम्हारी नाराजी? जाकर मीरा को ले आओ न।" अमृता सेटी के एक किनारे बैठी थी। उसकी गोद में किताब खुली हुई थी और उसके अनुरोध-पूर्ण नेत्र यति पर थे।

"मीरा क्यों नहीं समझती?"

"समझाया तो, पर वह तो हठीली है। नहीं मानती। तुम तो वैसे नहीं हो?"

"हूं! बहुत हठीला हूं तुम नहीं जानती अमृता, पर मीरा ने मुझे छोड़ दिया है। मेरा विश्वास उठ गया है। मैं अब सोचने लगा हूं कि यदि मैं किसी अपढ़, निर्धन लड़की से शादी करता तो सुखी रहता। उसके अन्दर ये इच्छाएं, हसरतें न होतीं जो मेरे धनाभाव से मीरा के अन्दर घुटकर मर गईं।"

"मीरा ने तुम्हारे लिए बहुत किया है, यति।" अमृता ने मृदु स्वर में कहा। यति ने झटके से खिड़की पर पर्दा डाल दिया, फिर उसने पास आकर हाथ से किताब नीचे गिरा दी और नीचे बैठकर अपना मुख अमृता की गोद में छिपा लिया।

अमृता स्तब्ध रह गई। उसकी भीत दृष्टि ने चारों ओर देखा। खिड़कियों पर पर्दे पड़े थे। द्वार बन्द था। कॉफी देकर रुकमन सोने चली गई थी। उस सन्नाटे में घास में झींगुरों का स्वर बहुत शोर मचाता-सा लगा। यति निश्चल बैठा था, उसके उड़ते हुए बालों की रेखा, उजली-सी गर्दन और चौड़े कन्धे। अमृता की दृष्टि अचानक ही धुंधली हो आई। यति का स्पर्श पुरुष का न था, एक प्रेमी का भी नहीं, सांत्वना पाने की इच्छुक आहत चिड़िया का था, गिरकर रोते हुए बेम्बी का—

"यति," अमृता ने कहा···उसने बड़ी मृदुता से दोनों हाथों से उसका मुख उठाया। उसकी उंगलियां भीगकर रह गईं।

यति रो रहा था। अमृता थरथराकर रह गई। "यति, यह क्यों, यह क्यों

यति।" उसकी उंगली में खारे आंसू थे, यति के आंसू।

"यति, तुम इतने बड़े, इतने क्षमतावान् होकर ऐसा आचरण कर रहे हो!"

अमृता समझ नहीं रही थी कि वह क्या कह रही थी। अगर बिबिया होती तो उसे पुचकारकर, चुमकारकर मना लिया जाता। अमृता की दोनों हथेलियां यति के बालों पर टिकी थीं, और वह समझाते हुए उससे कुछ कहती जा रही थी। उसकी सांस गले में फंस रही थी और शरीर में बड़ी विचित्र-सी बेकली समाई जा रही थी।

यति थका-हारा-सा उठकर चल दिया। अमृता उसके पीछे-पीछे द्वार तक गई और फिर जाते हुए यति की लम्बी परछाईं देखती रही। अगली शाम जब यति उसे पढ़ाने आया तो दोनों में से किसीने गत रात्रि का उल्लेख नहीं किया। पर दोनों ही एक अननुभूत संवेदना के साझीदार हो गए थे, और इसी कारण एक-दूसरे के पहले से कहीं अधिक निकट।

अमृता के कई पत्रों के जाने के बाद मीरा लौटी। अमृता उसे स्टेशन लेने गई थी। मीरा गई थी बड़े गर्व से, लौटी वह पराजिता-सी, बहुत विनीत और उदास। बिबिया अमृता से लिपट गई और टैक्सी में लौटते हुए अमृता सोचे हुए भर्त्सना के शब्दों में से कुछ भी न कह सकी।

"यति, बड़े खोए-खोए-से रहे," अमृता ने कहा। मीरा चुप रही।

उस रात बिबिया अमृता के पास ही सो गई, और यति सदा की तरह, अमृता को फ्रेंच पढ़ाने नहीं आया। वह क्लासेज के बाद ही सिनेमा चला गया और लौटा तब तक देर हो गई थी, सोयी बिबिया को गोद में लेकर अमृता पहुंचाने गई। कुछ गर्मी-सी होने के कारण सामने का द्वार खुला था। अन्दर कमरे में मीरा के सिरहाने टेबिल लैम्प जल रहा था और मीरा की चारपाई पर यति बैठा था। अमृता पर्दे के पीछे ही ठिठककर रुक गई। रोशनी लेम्बी के कोट और मीरा के मुख पर पड़ रही थी। जैसे वह चांदनी-सी थी जिसमें मीरा के चेहरे का उदास सांवलापन धुलकर निखर आया था। अपने शरीर का भार बायें हाथ पर टेक यति बैठा था और दाहिने हाथ की उंगलियों से धीरे-धीरे कभी मीरा की मुलायम लटें, कभी उसका माथा, कभी ओठ छू रहा था।

ओफ ! विबिया कितनी भारी थी। अमृता उसे बांहों में था
उसे अपनी चारपाई पर सुला दिया और स्वयं सेटी पर लेट गई।
से चमकीले आसमान का एक टुकड़ा दिखाई दे रहा था, अमृ
गीली, कभी सूखी आंखों से ताकती अपनी जिंदगी का पैटर्न बुनत

अमृता तौलिये से भीगे बाल पोंछती स्नानागार से निकली
प्रतीक्षा कर रही थी, चंचल उत्फुल्लित।

"आज कालेज नहीं जाओगी ?" उसने पूछा।

"जाऊंगी, फोर्थ पीरियड है।" अमृता ने कहा। मीरा का उमं
खोयेपन को और गाढ़ा कर रहा था।

"कहो, मेल हो गया ?" उसने तौलिये को झटका देते हुए पूछ

"अरे अमृता, क्या बताऊं कल तो यति बिलकुल···"

"चुप भी रहो मीरा, तुम तो सारी लाज-शर्म घोलकर पी गई

अमृता एड़ियों पर भार दे मीरा की ओर पीठ कर घूम गई।

"ओहो—तो तुम्हें क्यों लाज लग रही है ?"

मीरा खिलखिलाकर हंसी, वही पुरानी चार बरस पुरानी हंसी
से अपना मुख फिर पोंछ, अमृता ने मुड़कर मीरा को देखा, नई दुल
पर यही प्यार और सुहाग होता होगा। उसने हाथ फैलाकर अपनी
फिर मुट्ठी भींच ली। तौलिया फैलाते हुए उसने कुछ घुटे-से
"तुम्हारी खुशी देखकर बड़ी ईर्ष्या होती है मीरा। इसीलिए मैंने डै
दिया है कि मुझे कुंवर से विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं।"

अमृता सेटी के किनारे आकर बैठ गई। उसके गीले बालों से
रह-रहकर टपक जातीं।

"पर तुम तो कुंवर को जानती भी नहीं।" मीरा ने
चुप रही, उसकी दृष्टि बड़े यत्न से सजाए गए अपने
अन्दर कुछ टूटने-सा लगा।

[illegible] है?"

"[illegible] तो अपनी जमी-जमाई ज़िन्दगी को यहां से उखाड़कर दूसरी [illegible] हूं। बात यह है मीरा कि मैं तुम सबसे दूर जाना चाहती हूं, बहुत दूर, जहां तुम्हारे चेहरे धुंधली-सी याद बन जाएं।"

अमृता अपने बालों से टपकते जल-बिन्दुओं पर दृष्टि जमाए रही। आं[illegible] [illegible] भर आती थी।

और फिर, जब उसने आंखें उठाकर मीरा को देखा, तो उसे बड़ा उद्विग्न-सा [illegible]। सुबह की वह खुशी, वह उल्लास विलीन हो गया था। सहसा मीरा ने उसके कंधों पर हाथ रख दिए और अटककर पूछा : "क्या मेरी अनुपस्थिति में यति [illegible] है—?"

अमृता के चेहरे पर जो भाव दौड़ गया उससे मीरा कुंठित होकर चुप हो गई। फिर उसने बहुत मृदुता से कहा : "मैं तुम पर या यति पर अविश्वास नहीं कर रही हूं अमृता। मुझे हमेशा से यह लगता रहा, जैसे कि वह तुम्हें कुछ-कुछ प्यार-सा करता आया है। तुम्हारे लिए यति के मन में बड़ी हमदर्दी है। मैं ईर्ष्यालु नहीं हूं, अमृता—मैं तुमसे यह सब कहती ही नहीं। पर तुम्हारे इस आक[स्मिक] निश्चय से मैं ऐसी घबरा गई और मैं कह गई। मेरे इस प्रश्न को भूल जाओ अमृता…"

कौन जानता था कि हमेशा के सुस्त डैडी इस बार इतनी फुर्ती दिखाएंगे सब बातें तय हो गई। शादी की तारीख निकल आई। निमंत्रण-पत्र बंट गए औ[र] अमृता अपने में ही डूबी रही। उसने किसी चीज़ में रुचि न ली। कॉटेज वह तभ[ी] छोड़कर चली आई थी। और डैडी के साथ रहने लगी, क्योंकि वहां सभी प्रकार की सुविधा थी।

मीरा अस्वस्थ थी और डॉक्टर ने इस बार उसे आरम्भ से ही बहुत सावधा[न] रहने की चेतावनी दे दी थी। यति कभी-कभी दो-चार मिनट को आ जाता औ[र] कभी अमृता से साथ चलने के लिए आग्रह भी करता। पर अमृता नहीं गई। यति के नेत्रों की आकुलता उससे छिपी न थी। यति के पूछने पर वह क्या उ[त्तर] देती?

वह यति को कैसे समझा सकेगी कि कुंवर से विवाह करने के मूल में कौन-
एक घटना थी ?

दो-तीन दिन पहले यति प्रेशर-कुकर दे गया था।

"विविया तुम्हारी बहुत याद करती है।" यति ने कहा।

"मुझे भी उसकी बहुत याद आती है।" अमृता को एकाएक लगा कि वह
विविया की बात नहीं कर रहे हैं।

"यह तो मीरा की ओर से है। मैं तुम्हारे लिए कुछ और दूंगा। ढूंढ़ रहा
हूं।"

अमृता चुप रही। उसके जाने के बाद ममी और बल्लीमारों वाली मौसी
आकर इस बात पर विवाद करने लगीं कि बारात के आगमन के समय अमृता को
कौन-सा जोड़ा पहनाया जाए।

—मुझसे दूल्हन नहीं बना जाएगा। अमृता ने चाहा कि चीखकर कह दे, पर
अपने शब्दों की अनुगूंज से वह स्वयं चौंककर रह गई।

बढ़ई पेटियां बन्द कर चुका था। और ठक्-ठक् की आवाज़ बन्द थी। केवल
अशोक की शाखों की एक-दूसरे से रगड़ और आम के पेड़ पर के दो तोते पंख फड़-
फड़ाते हुए उड़ गए।

दीवानसिंह और मनोहर ने पेटियां ले जाकर अन्दर रख दीं और ताला बन्द
कर दिया। वह पसीना पोंछते हुए आए और बड़ी-सी काली चाबी उसे पकड़ा
दी।

"तुम दोनों अब किचनर रोड चले जाओ। मैं एक बजे तक आ जाऊंगी।"
अमृता ने कहा। फिर उसने कपड़े बदले और दोनों किताबें उठा लीं। उसने सोचा
था कि यति की ये दोनों किताबें उसे लौटा देगी : अब इनका क्या प्रयोजन...
यति के साथ आखिरी बार चाय पिएगी और किचनर रोड लौट जाएगी...
अपने को कल वह अपने उन सम्बन्धियों की दया पर छोड़ देगी। हाथ में...
मेहंदी लगवा लेगी। मुख पर चन्दन-बिन्दु, और उसके बाद फूलों के गहने...
लेगी। पर आज का दिन उसका अपना; सोचने के लिए, याद करने के लिए,
मनाने के लिए।

अमृता ने रेस्त्रां में जाकर चारों ओर यति को खोजते हुए देखा। अन्दर हलका-सा अंधेरा था और धूप से आने के कारण उसे सब कुछ स्पष्ट नहीं दिखाई दे रहा था। बैंड पर नाच की एक पापुलर धुन बज रही थी और सब ओर धुआं-धुआं-सा था। एक कोने की मेज़ पर से कोई उठा और उसकी ओर बढ़ने लगा। अमृता ने एक क्षण को समझा कि वह यति है। पर ध्यान से देखने पर पाया कि वह तो उसे जानती भी नहीं। वह जब ठीक सामने आकर खड़ा हो गया तो वह एक आघात से कांपकर रह गई। कुंवर उसे देखकर मुस्कराया: "किसी को खोज रही हैं आप ?"

"जी," बहुत पतले स्वर में अमृता ने कहा।

उसने चारों ओर फिर देखा, पर यति कहीं न था। उसका असमंजस भांपकर कुंवर ने कहा: "जब तक आप इन्तजार करें, तब तक एक प्याला चाय पी लीजिए।"

अमृता कुछ सोच न सकी। जाकर बैठ गई। कुंवर शायद शॉपिंग कर रहा था क्योंकि उसके पास कुर्सी पर कई पैकेट रक्खे हुए थे। उसका प्याला आधा खाली था।

"आप कॉफी लेंगी या चाय ?" कुंवर ने बड़ी शिष्ट और औपचारिक रीति से पूछा।

कुंवर को मेन्युकार्ड उठाते देख उसने कहा: "मैं कुछ खाऊंगी नहीं।"

आमने-सामने बैठे होने पर भी वह कुंवर को सीधी दृष्टि से न देख सकी। उसकी पीठ दरवाज़े की ओर थी, पर सामने दीवार पर स्वच्छ दर्पण का एक लम्बा पैनेल लगा था जिसमें उसे आने-जाने वालों का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा था। कॉफी के छोटे-छोटे घूंट पीती हुई वह दर्पण पर आंखें गड़ाए रही। पर उसकी चेतना सजग थी। कुंवर यथार्थ था, वास्तविक देख लो, अच्छी तरह देख लो। एक छोटा-सा विचार अमृता को उद्विग्न कर रहा था। अभी समय है, अभी भी तुम वापस जा सकती हो, अपने कॉटेज में, जहां बिबिया है, बेम्बी और मीरा—

कुंवर ने अचानक ही मेज़ पर शिथिल पड़े अमृता के हाथ को अपनी बड़ी-सी हथेली में ढंक लिया।

"आप बहुत चिंतित लग रही हैं।" उसने बड़े मन्द और कोमल स्वर में कहा। चौंकी अमृता की दृष्टि उसकी आंखों से टकरा गई। उसने पहली बार कुंवर को

भरपूर दृष्टि से देखा। कुंवर के चेहरे पर हलकी-सी मुस्कान थी, मुस्कान में आश्वासन और आंखों में गहरा धीरज।

अमृता ने अनुभव किया कि उसके झुके हुए हाथ का स्पर्श उसे अनेक अनजाने संदेह दे रहा है। वह एक पुरुष का स्पर्श है, एक प्रेमी का भी—और वह अरुचि-कर, अप्रीतिकर भी नहीं···

और तभी उसने सामने के दर्पण में देखा कि हाथों में एक पैकेट पकड़े यति उसे खोज रहा है। अमृता निश्चल बैठी यति के प्रतिबिम्ब को ताकती रही। उसने चाहा कि वह अपना हाथ खींच ले, पर उसपर ऐसी जड़ता आ गई, वह हिल-डुल भी न सकी।

और यति ने उसे देख लिया। देर तक वह वहीं खड़ा रहा। दर्पण में दोनों की आंखें मिलीं और अमृता ने अपना हाथ खींच, कॉफी का प्याला ओठों से लगा लिया। यति मुड़ा और बाहर चला गया। अमृता दर्पण को देखती रही, और कुंवर मौन बैठा उसे देखता रहा।

अमृता ने एक लम्बी सांस ली : "अब चलूं। डैडी लंच पर मेरा इन्तजार कर रहे होंगे।"

कुंवर ने बिल चुकाकर अपने पैकेट उठा लिए। अमृता उठ खड़ी हुई। बैंड बन्द हो गया था और चारों ओर बातचीत का हलका-सा रव उठ रहा था।

"यह पैकेट आपका है ?" कुंवर दोनों किताबों को उठाकर पूछ रहा था।

"नहीं।" अमृता ने कहा और कुंवर के साथ बाहर निकल आई।

मोहबंध

ऊपर कमरे में अंधेरा-सा हो गया। अचला नीचे चली आई। नीनू के कमरे का दरवाज़ा बन्द था, पर नीचे दरार से प्रकाश बाहर आ रहा था। गैलरी में बिछी मैटिंग से उसके पैरों की आहट दब गई। जब वह बाहर आई तो देखा कि आग के पास, आराम कुरसी पर अधलेटा-सा, तिपाई पर कैंचाकार पैर रखे हुए राजन सो रहा है। पास की कुरसी पर नीनू की पशमीने की शाल लापरवाही से पड़ी हुई थी। उसे हटाते हुए अचला धीरे से बैठ गई। उंगलियों में उंगलियां फंसाकर उसपर ठोड़ी टिका ली और सामने की दीवार देखने लगी। वह रंग की दीवार पर बड़ा-सा चाइनीज़ चित्र था—कुछ देर उसे देखा, नीली झील के ऊपर झुके हुए पेड़, कहीं हलका नीला, कहीं सफेद आकाश। सोते हुए राजन को देख अचला को अचानक नीनू के पत्र की कुछ पंक्तियां याद आ गईं। तब नीनू अपना हनीमून मना रही थी, और उसने अचला को लिखा था—

"मैं बननी नहीं, अब तक मेरे जीवन में अनेक व्यक्ति आए और उनमें से कुछ के लिए मैंने थोड़ा-बहुत अनुभव किया ही। पर राजन के लिए मेरे दिल में जो कुछ है, वह उन भावनाओं से बहुत भिन्न और बहुत व्यापक और गहरा है। मैं उसकी गहराई से स्वयं ही डर जाती हूं। राजन के सामीप्य के बाद मेरे मन में कुछ कचोटने लगता है कि काश, मैं अछूती और बेदाग इन बांहों में आती—उन सुन्दर और असुन्दर चेहरों के प्रेम मुझे घेरा न करते। मैं सच कहती हूं अचला, अगर कोई दिन ऐसा आया, जबकि मैंने राजन की आंखों में अपने लिए प्यार न पाया, उस दिन मैं मर जाऊंगी—"

अचला ने यह पत्र इतनी बार पढ़ा कि उसे अक्षर-अक्षर याद हो गया। फिर उसके टुकड़े-टुकड़े कर हवा में उड़ा देने पर भी उसे लगता रहा कि जैसे ये अक्षर उसके दिल पर लकीरों की तरह अमिट हो गए हैं।

कोयलों पर राख की पर्तें जमती जा रही थीं, कभी हवा चलती और देर

झुक-झुककर एक-दूसरे को छूने लगते। राजन सो रहा था, उसके मुंह पर एक शिशु की तरह सारल्य था।

दौड़ते हुए दो नंगे पैरों की आहट—और फिर अन्दर हॉल में नारंगी की आवाज़, "गाड़ी आ गई है, मेमसाव।" और दूर से नीलू का स्वर, "अच्छा।" कुछ देर में नीलू अन्दर आई—अचला को देख हल्का-सा मुस्कराई। नीलू के अन्दर आते ही राजन ने आंखें खोल दीं और उठकर बैठते हुए पूछा, "कहीं जा रही हो?"

नीलू के सेंट की सुवास से कमरा भर उठा।

"तुम्हें वताया तो था डार्लिंग—आज मीनू देसाई के घर डिनर है। क्लव के वार्षिकोत्सव के लिए प्रोग्राम तय करना है।"

"वताया होगा, याद नहीं। पर जाना क्या ज़रूरी है? अचला जव से आई है तुम रोज कहीं न कहीं गायव रहती हो।" राजन के स्वर में तलखी थी।

"अचला कोई ग़ैर थोड़े ही है। तुम्हें ऐतराज़ है, डियर?" उसने अचला की ओर देखा। सदा की तरह नीलू छोटी वच्ची थी जिसे कोई कुछ देना अस्वीकार नहीं कर पाता।

"नहीं नीलू, मैं जानती हूं कि तुम बहुत व्यस्त हो।" मोरपंखी नीले रंग की सिल्क की साड़ी के चौड़े ज़री वार्डर को गोरी उंगलियों से ठीक करती नीलू ने राजन को मनाते हुए कहा, "मैं जल्दी आने की कोशिश करूंगी। तुम अचला का ध्यान रखना, अच्छा जाती हूं।"

पर राजन ने मुंह फेर लिया और नीचे गिरी हुई पत्रिका उठाकर देखने लगा। नीलू एक पल ठिठकी, फिर कमरे से निकल आई। अचला उसके साथ आई। नीलू ने विचारपूर्ण मुद्रा से कहा, "राजन को न जाने क्या हो गया है। यों ही नाराज होते रहते हैं। कितने दिन पहले से कह रखा था कि आज मुझे जाना है, अपना कुछ प्रोग्राम वना लेते। हफ्तों से क्लव नहीं गए हैं। जब से तुम आई हो कभी उन्हें कहीं जाते देखा है?" फिर प्यार से कहा, "तुम्हारा सिरदर्द अव कैसा है? अपने को ज्यादा मत थकाना।"

अचला उसके कानों में पड़ी हुई लम्बी-लम्बी मोती की लड़ियों को देख रही थी। उसकी कल्पना दो कदम आगे बढ़ गई—मिस्टर देसाई की आंखों की हस-

फुसी करते थे—"वह कौन है, वह सुन्दर युवती ?" वह मिसेज राजन हैं—"राजन एक लखपती मिल-मालिक का लड़का है। वह किसी महारानी की तरह लगती है।" ओठो की लालिमा, मोतियों की आब—दक्षिणी सिल्क की साड़ी से झलकती शरीर की कमनीय रेखाएं।

कार चली गई। जाने के बाद भी अचला बाहर ही खड़ी रही, हवा में ठण्डक थी, तारों में चमक—उसकी सांसों मे नीलू की सुगन्ध थी—और उसका दिल बुझा हुआ—न कामना, न ईर्ष्या, न दर्द। लान के कोने में युकेलिप्टस के दो बड़े-बड़े पेड़ अंधेरे मे सिर ऊंचा किए खड़े थे—और दिन मे लाल दीखने वाले गुलाब काले पड़ गए थे। अचला का सिर फिर दुखने लगा और वह अन्दर वापस आ गई। खुले में बिना ओढ़े खड़े-खड़े उसके हाथ ठण्डे हो गए थे, झुककर वह कोयलों के पास बैठ गई। राजन कमरे में नहीं था—वह कब आया, अचला ने नहीं जाना, उसे तो राजन की उपस्थिति का पता तब चला जब उसने नीलू की शाल अचला के कन्धे पर डाल दी। पशमीने का नरम स्पर्श और गर्मी—वह चौंक पड़ी। पर जब राजन ने उसका चेहरा देखा तो पूछा, "क्या बात है ? सिर दर्द अभी भी हो रहा है ?" अचला ने स्वीकृति मे सिर हिलाया।

"अपने कमरे में आराम करो। मैं नारंगी को भेजता हूं। सिर दबा देगी।"

अचला शाल उतारकर रखने लगी। राजन ने कहा—"ओढ़े रहो, ऊपर जाकर भेज देना।"

नारंगी नीलू की आया की लड़की थी। अचला का सिर दबाते-दबाते वह बातें करती रही और अचला आख बन्द किए 'हूं—हां—' करती रही। उसे रह-रहकर यह खयाल आ रहा था कि इतने बड़े डाइनिंग रूम में राजन अकेले ही खाना खा रहा होगा।

अचला को लगता है कि जीवन ऐसे ही बीत जाएगा—और एक दिन मौत भी द्वार पर आ खड़ी होगी। उस अन्तिम क्षण अपनी जिन्दगी पर दृष्टि डालकर उसे लगेगा कि वह जैसे रोती-रोती आई थी, वैसे ही जा रही है। सूखे फूलों-सी, पुराने प्रेम-पत्रों के पीले पड़े कागज-सी कुछ स्मृतियां लिए हुए चली जाएगी। अचला के देखते-देखते ही सुजाता की शादी हुई, दो बच्चे हुए—और यह अचला

कहती रहती हैं—जिन्दगी बहुत छोटी है, बहुत मूल्यवान् है…भविष्य की ओर दो, नारी की सृष्टि इसलिए नहीं हुई कि वह पुरुषों की समानता कर, लड़कियों को अर्थशास्त्र पढ़ाते-पढ़ाते काट दी जाए। सुजाता ने अचला के लिए एक सुयोग्य पात्र भी ढूंढ़ रखा था, पर अचला को लगता है कि उसके दिल में जो कुछ भी था, चुक गया है —अब वह कुछ महसूस नहीं कर पाती—सांसें आती हैं, दिल धड़कता है, जिन्दगी समाप्त हो गई है।

नीचे पोर्च में कार रुकने की आवाज आई। नीलू अब डिनर से लौटी थी। अचला ने अंधेरे में चमकती घड़ी की सूइयों को देखा, एक बजा था। उसके कमरे के आगे से दो जोड़ी पैर गुजर गए। नाराज होने के बावजूद भी शायद राजन अभी तक नीचे बैठा नीलू का इन्तजार कर रहा था।

अचला का मन छटपटाने लगा, किसीको इतना अनुराग, सुख और मान, किसीके भाग्य में कुछ नहीं, रूप जीत जाए, प्यार हार जाए, उसने कम्बल खींचकर अपना शरीर ढंक लिया। सोने की चूड़ियों के बीच पड़ी दो कांच की चूड़ियां खन्न से बोलीं और बहुत दिनों पहले का एक सपना, एक याद दबे पांव उसकी आंखों के आगे आकर खड़ी हो गई। अचला को लगा कि नीलू उसके पास ही पलंग पर लेटी है। कमरे में अंधेरा है, दोनों जाग रही हैं, पर दोनों मौन हैं। कमरे की खिड़की से बाहर इमली का पेड़ दिखाई दे रहा है और उसके पीछे धीरे-धीरे थका चांद अकेला आकाश का रास्ता पार कर रहा है। अचला ने मुं… ं आंचल दबा रखा है—नीरव अश्रु उसकी कनपटियों से होकर तकिये पर गि… रहे हैं—निःशब्द क्रन्दन से उसका शरीर कांप रहा है। नीलू ने कुछ देर बाहर आकर कपड़े बदले हैं—पन्ने के रंग की हरी साड़ी का पल्ला अब भी कभी-क… हिल उठता है। और नीलू के तकिये के नीचे एक पत्र है—"मुझे इस बात… खुशी है कि मुझे प्यार भी मिला तो तुम्हारी-सी सुन्दर लड़की का—" … देवेन्द्र की है, पत्र नीलू के लिए। अचला मौन रो रही है, नीलू चुप है। रो… तरह उसने लौटकर अचला से शाम की अपने साथी की बातें नहीं की हैं। अचला को मालूम था कि वह देवेन्द्र के साथ बाहर गई थी।

देवेन्द्र ने सहसा अचला की बांह कसकर पकड़ ली और कहा, "वह

अचला ? उधर देखो, तुम्हें वेव कर रही हैं।"

अचला ने हाथ हिलाकर, उत्तर में वेव करते हुए मुसकराकर कहा, "नीलू—मेरे ही कमरे में रहती है।"

शहर में कुछ इंगलिश एक्टर्स आए थे और वह उस रात शेक्सपियर का एक नाटक कर रहे थे। सदा की तरह अचला देवेन्द्र के साथ आई थी और नीलू अपने मित्र कुंवर इन्द्रजीत के साथ बिलकुल आगे रिज़र्व सीट्स में बैठी थी।

"तो यह है तुम्हारी नीलू!" देवेन्द्र ने प्रोग्राम से दृष्टि हटाकर एक बार फिर नीलू की ओर देखा। कटे हुए बालों के फैशन के बावजूद भी नीलू के बाल लम्बे थे—और इस समय उसने जूड़े में चांदी का बड़ा-सा आभूषण लगा रखा था, जिसमें छोटे-छोटे घुंघरू लटक रहे थे। वह शॉकिंग पिंक रंग की साड़ी पर काली शाल ओढ़े थी। इंटरवल में अचला ने देवेन्द्र का परिचय उससे कराया। कुंवर इन्द्रजीत के पास मर्सीडीज कार थी, पर वह नाटे और भारी शरीर के थे। देवेन्द्र लम्बा था, दुबला—अब तक वह बराबर यूनिवर्सिटी में प्रथम आता रहा था, उसकी थीसिस की काफी चर्चा हुई थी, अचला को नीलू पर भी गर्व था, देवेन्द्र पर भी। इंटरवल खत्म होने के बाद जब लौटने लगे तो देवेन्द्र ने कहा, "अब तो आपसे मुलाकात होती रहेगी।"

नीलू मुसकराई, "हां क्यों नहीं। अचला आपका जिक्र तो हर दफा करती थी, अगर आज यहां न मिलते तो शायद शादी में ही मिलते।"

"किसकी शादी डियर ?" कुंवर इन्द्रजीत पूछ बैठे।

"अचला की।" नीलू अचला की ओर देखकर शरारत से हंसी।

"बड़ी खराब है नीलू !" वापस अपनी सीट पर बैठकर अचला ने देवेन्द्र से कहा। पर देवेन्द्र ने कहा, "तुमने ऐसा क्यों कहा नीलू ? अभी तो कुछ भी निश्चय नहीं है।"

नीलू अपने मुंह पर कोल्ड क्रीम लगाते हुए बोली, "बनो मत। जब से देवेन्द्र की यूनिवर्सिटी में नियुक्ति हो गई है, हवा में उड़ती रहती हो। मुझे बहुत अच्छे लगे तुम्हारे देवेन्द्र—तुम बहुत सुखी रहोगी।"

"सच नीलू ? मुझे विश्वास नहीं होता। अभी तक उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।"

"पगली। साल-भर से रोज हाजिरी देते हैं—घंटों बातें करते हैं—तो क्या

यह सब केवल बौद्धिक मैत्री है !" नीलू ने अचला के दिल के कोनों में दुबकी विभिन्न आशंकाओं को सुनने से इनकार कर दिया। पर अचला सोचती रही। विवाह में तो कोई बाधा थी नहीं, उसके अपने एक वृद्ध पिता थे, देवेन्द्र भी घर में सबसे लाड़ला था। ऊपर से कुछ भी कहे, मगर अचला ने मन ही मन देवेन्द्र का घर सजाने की योजनाएं बना ली थीं, आगे जो थोड़ी-सी ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पड़ी थी, उसमें बाग लगाने का मन था, नील कांटे की बाड़, एक गोल घेरे में गुलाब, सामने की दीवार पर चढ़ती हुई कुबेराक्षी की लतर, और फाटक के इधर-उधर इन्द्रबेला के गुम्बज। बेले के कुछ पेड़, जिसके फूल वेणी में लगाए जा सकें—उसने यह भी निश्चय कर लिया था कि अगर इन्हीं गर्मियों में देवेन्द्र विवाह करने को कहेगा तो वह फिर आगे फाइनल नहीं करेगी और वह जानती थी कि वह देवेन्द्र के साथ बहुत सुखी होगी। साल-भर पहले जब से लाइब्रेरी में देवेन्द्र से उसका परिचय हुआ था, करीब-करीब हर शाम देवेन्द्र ने उसके साथ बिताई थी। अगर कभी आ न सका, तो फोन अवश्य किया। कहीं शहर से बाहर गया तो उसे बराबर पत्र लिखता रहा। चाहे वह देवेन्द्र के साथ किसी शानदार रेस्ट्रां में हो, या शाम के धुंधलके में यूनिवर्सिटी के पास निर्जन सड़कों पर टहलती हो, अचला की आंखें एक अलौकिक आन्तरिक उल्लास से दीप्त रहती थीं। उसे लगता कि नैकट्य के इन क्षणों में उनपर इन्द्रधनुष के रंग बरसते हैं, तारक धूलि झरती रहती है और जो कुछ उसने पाया है, वह अत्यन्त सुकुमार और स्पृहणीय है।

इसी तरह एक बार सिनेमा से लौटते हुए अचला ने कहा, "अगले हफ्ते एक बड़ी अच्छी फिल्म आ रही है। उपन्यास मैंने पढ़ रखा है, चलेंगे न ?" कुछ क्षण चुप रहकर देवेन्द्र ने कहा, "मुझे इधर बहुत काम है अचला। शायद अब मैं काफी दिनों तक बाहर न आ-जा सकूं। और तुम्हें भी तो पढ़ना होगा।" अचला का एकदम फीका पड़ गया मुख देखकर उसने हलकी-सी मुस्कान से कहा, "मैं महसूस करता हूं कि मैंने तुम्हारे मूल्यवान् समय का बहुत बड़ा हिस्सा बरबाद कर दिया। मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण तुम अपनी प्रथम श्रेणी खोओ। अभी कुछ महीने हैं— कसकर पढ़ लो।"

अचला दांतों से ओंठ काटती हुई चुप रही। उसे स्वयं याद आ रहा था कि वह पढ़ाई में कितनी पिछड़ गई है।

"मैं तुमसे मिलता रहूंगा, मगर रोज़ नहीं। मुझे उम्मीद है कि तुम सम-

होगी, अचला।"

अचला अपने आंसुओं से लड़ रही थी। न जाने क्यों उसके आगे सहसा अंधकार-सा हो गया था। उसने कहना चाहा कि वह प्रथम श्रेणी नहीं चाहती, पर साथ ही उसे यह भी लग आया कि देवेन्द्र यह नहीं समझेगा।

पर उसके बाद उसने किताबों की गर्द झाड़ी, पढ़ने का टाइमटेबिल बनाया और अर्थशास्त्र की मोटी, नीरस किताबों में अपने को डुबाना चाहा। पर अक्सर उसका ध्यान भटक जाता और उन्मन हो पेंसिल दांत से चबाती हुई वह बाहर देखने लगती। उसे शाम को भी पढ़ते देख नीनू ने कोई प्रश्न नहीं पूछा, इसपर कभी-कभी उसे आश्चर्य होता। नीनू हमेशा की तरह शाम को तैयार होकर बाहर जाती, पर कुंवर इन्द्रजीत की कार कम ही दिखाई देती।

पत्ते झरते रहे, सूनी, उदास हवा निर्जन सड़कों पर भटकती रही, अचला का मुख पीला होता गया। उसका जीवन एक लम्बी प्रतीक्षा बन गया था—उस पदचाप के लिए, जो सुनाई नहीं पड़ी; पत्र, जो नहीं आया; फोन, जिसकी घण्टी कभी उसके लिए नहीं बजी, और एक दिन पास के कमरे की सुजाता उसके पास आकर बैठ गई और धीरे से बोली, "आज देवेन्द्र का फोन आया था।"

चौंककर अचला ने कहा, "कब? मुझे क्यों नहीं बताया?"

"नीनू के लिए था।"

अचला अविश्वास से सुजाता की ओर देखती रह गई। फिर कहा, "क्या तुम्हें पक्का मालूम है?"

सुजाता ने उसका चेहरा देखकर आंखें झुका लीं—फिर कहा, "नहीं किसी और का होगा—मैंने फोन उठाया तो मुझे पहचानी-सी आवाज लगी, तो मैंने सोचा। मगर देवेन्द्र क्यों नीनू को फोन करेंगे?"

"यही तो मैं भी सोच रही थी।"

उस रात नीनू लौटी तो अचला ने कहा, "नीनू, तुम्हें देवेन्द्र ने फोन किया था?"

जूड़े से कांटे निकालते हुए नीनू के हाथ स्थिर हो गए—"क्यों?"

"यों ही पूछा मैंने।"

"नहीं तो," नीनू ने अचला की ओर नहीं देखा।

"सुजाता को भ्रम हुआ होगा। मैं सारी शाम इसी उलझन में पड़ी

तुम कहां गई थीं ?"

"कहीं नहीं—ज़रा-सा इधर-उधर।"

नीलू तौलिया लेकर बाहर चली गई, और जब बहुत देर में आई तो अचला सो चुकी थी।

कुछ दिन बाद अचला को कुछ डाक टिकटों की ज़रूरत पड़ी तो नीलू की आलमारी खोलकर उसने हमेशा की तरह टिकट ले लिए। जब लेटरपैड रख रही थी, तब एक लिफाफा उसके पैरों के पास आ गिरा। झुककर उठाते हुए उसने देवेन्द्र की लिपि पहचान ली। बिना कुछ सोचे हुए वह पढ़ने लगी—पहले उसे अपने पर विश्वास न हुआ और जब विश्वास हुआ तो कितनी ही छोटी-छोटी बातें, जो उसे परेशान करती रही थीं, एकाएक स्पष्ट हो गईं—नीलू, सुजाता, देवेन्द्र'''और मुझे प्यार भी मिला तो तुम्हारी-सी सुन्दर लड़की का' देवेन्द्र ने लिखा था। होस्टल के पीछे बांसों के पेड़ थे—उन्हींकी पीली, चुभीली पत्तियों पर अचला जाकर औंधी पड़ गई। हवा में बांस सरसराते रहे—एक अज्ञात पक्षी रह-रहकर बोल पड़ता, पर उसके उत्तर में कोई और आवाज़ नहीं आती।

अचला को सुजाता ज़बर्दस्ती बाज़ार ले गई थी। लौटकर वह थकी हुई, कमरे के आगे की सीढ़ियों पर— खम्भे की आड़ में बैठ गई थी—तभी कमरे का पर्दा हिला, और देवेन्द्र तेज़ी से बाहर आया—उसका मुख देखकर अचला का दर्द फिर हरा हो आया। हलका-सा अंधेरा था, मगर फिर भी उसे लगा कि देवेन्द्र की आंखों में आंसू हैं। आंधी की तरह जब देवेन्द्र सीधा देखता हुआ उसके पास से गुज़रा तो अचला के कंठ से रुंधी हुई पुकार निकली, 'देवेन' और उसने उठना चाहा—पर सुजाता ने कसकर उसकी बांह पकड़ ली और जब तक अचला ने अपने को छुड़ा पाया, तब तक देवेन्द्र गेट से बाहर जा चुका था। अचला की गोद में रखा और उठने से गिर गया ओवल्टीन का डिब्बा, हर सीढ़ी से टकराकर ठक-ठक करता हुआ नीचे आ गिरा। अचला की चीख निकलने से पहले ही सुजाता ने मुंह पर हाथ रख दिया और उसे अपने कमरे में जाकर लिटा दिया। उस दिन के बाद अचला ने देवेन्द्र को फिर नहीं देखा।

डॉक्टर ने राय दी कि अचला को घर चला जाना चाहिए, क्योंकि वह नर्वस

ब्रेकडाउन की सीमा पर थी। जिस सुबह वह जा रही थी, उससे एक रात पहले नीनू, सुजाता के कमरे में, अचला के पास झिझकती हुई आई थी। बिना कुछ कहे उसने अचला के पलंग की पट्टी पर सिर रख लिया और बच्चों की तरह रोने लगी।

"मेरा कुछ दोष नहीं था अचला—मेरी बात पर विश्वास करो···" टूटे शब्दों में वह कह पाई।

अचला के जाने के बाद भी नीनू उसे पत्र लिखती रही। आगे उसने नहीं पढ़ा और अपने माता-पिता के साथ वह विदेश-भ्रमण को चली गई। अचला ने उसके बाद दूसरी युनिवर्सिटी से एम० ए० किया—उसके पिता बहुत चाहते रहे कि उसका विवाह कर दें पर अचला ने नहीं माना। अब छह-सात साल बाद उसका अपना छोटा-सा घर था, गुलाब भी थे और नील कांटा भी। पर बेले के फूल वेणी में नहीं लगाए जाते थे, खिलते थे और झर जाते थे।

अगली सुबह जब राजन नाश्ते के लिए नीचे आया तो नीनू नाश्ता खत्म कर कॉफी पी रही थी। उसने सफेद रंग की सिल्क की साड़ी पहन रखी थी और गहरे नीले रंग का शाल ओढ़ा हुआ था। वह सुबह के फूलों-सी ताजी लग रही थी, टोस्ट पर जैम लगाते हुए राजन ने पूछा, "आज का क्या प्रोग्राम है ?" और पहले नीनू, फिर अचला की ओर देखा—अचला का मुंह कुम्हलाया हुआ था और उसकी आंखों के नीचे काली परछाइयां थीं।

"आज किशनपुर जाना है।" नीनू ने अपराधी जैसी मुद्रा से कहा।

"ओ-ऽ-ऽ" राजन ने कहा, फिर अचला से कहा, "देखा न, हमारी नीनू कितनी व्यस्त रहती है। कभी क्लब का डिनर है, कभी कल्याण-कार्य के लिए किसी पिछड़े गांव में जाना है, कभी विमेन्स लीग की मीटिंग है। अगर नीनू और इनकी तरह अकर्मण्य साथिनें यह सब न करें तो देश का उद्धार कैसे हो ?"

"तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करते, राजन ! मैं एक दायरे में बंधकर नहीं रह सकती," नीनू ने कहा।

"तुम्हारा घर में रहना बन्धन है ?" राजन ने पूछा। स्थिति गम्भीर हो

थी। नीलू ने राजन की रोषभरी मुद्रा को देखकर, कुछ फ़ीकी हंसी हंसते हुए चला से कहा, "यह चाहते हैं कि मैं घर में रहूं। कुत्ते पालूं, वाग देखूं और पर-चर्चा करूं जैसे कि सब करते हैं। मुझसे नहीं होता। वेहद ऊब जाती हूं।"

फिर उसकी नज़र घड़ी पर गई, उठती हुई वोली, "मैंने मिसेज़ कादिर को आठ वजे उनके घर से लेने को कहा था। आठ तो यहीं वज गए।" जाने से पहले उसने अनुनय-भरी दृष्टि राजन पर डालकर कहा, "कल से मैं कहीं नहीं जाऊंगी। सच। फिर घर में अचला भी तो है। तुम अकेले तो नहीं हो।" राजन चुपचाप अपनी कॉफी पीने लगा, उसने नीलू की वात की उपेक्षा कर दी। एक क्षण खड़े रहने के वाद नीलू चली गई। कार स्टार्ट हुई और चली गई। डाइनिंग रूम में निस्तब्धता रही। फिर राजन ने पूछा, "अव सिरदर्द कैसा है?"

"सुबह तो कम रहता है। दोपहर को वढ़ जाता है।" अचला ने कहा।

फिर मौन। फिर राजन वोला, "नीलू इतनी व्यस्त रहने लगी है कि मैं अकसर विलकुल अकेला रह जाता हूं। मुझे लगता ही नहीं कि घर में मेरी पत्नी भी है।"

"आप भी क्लव चले जाया कीजिए," पिछली रात की बात याद कर अचल ने कहा।

"जव सोचता हूं कि लौटकर इसी अकेले घर में आना पड़ेगा तो कहीं जाने मन नहीं होता।" फिर कुछ रुककर पूछा, "अचला, क्या नीलू को मैंने व स्वतन्त्रता दे रखी है?"

उस प्रश्न पर अचला ने कुछ मुसकराकर कहा, "नीलू को अगर आप व रखेंगे तो वह नीलू नहीं रहेगी।"

"नहीं, दोष मेरा ही है। मैंने शुरू से ही उसे वहुत विगाड़ दिया। ज चाहा, दिया, कभी राह में नहीं आया। पर अव सोचता हूं कि मैंने किया।" फिर अपने को ही समझाते हुए वोला, "मगर नीलू की इच्छ अवज्ञा करता भी तो कैसे? मैं सवल, समर्थ होने के मद में रहा और वनती हुई, जो चाहती करती गई।"

राजन ने अचला की ओर देखा, उसके ओठ, विद्रूपमय मुस्कान से आए।

... अब मैं सिर्फ वह व्यक्ति हूं, जो उसे शान-शोकत में र

मेरा काम तो बस, उसके नाम आए लम्बे बिल चुकाना है। मैं उसके जीवन में गौण हो गया हूं।"

"जहां तक नीलू का प्रश्न है, उसके आगे सभी गौण हो जाते हैं," अचला ने कहा।

अचला की बात की ध्वनि से राजन चौंका।

दोनों हाथों की उंगलियों को एक-दूसरे में फंसाकर, तीक्ष्ण दृष्टि से अचला को देखते हुए उसने कहा, "मुझे सब मालूम है और उसके लिए मैं नीलू को दोषी ठहराता हूं।"

"शायद नीलू का दोष इतना न था, जितना"—अचला नाम लेने से पहले एक पल रुकी, "कि देवेन का।"

"पर अचला। इस वक्त कह ही दूंगा क्योंकि यह बहुत दिनों से सोचता आया हूं—वह यह कि तुम क्यों डिकेन्स की पात्री मिस हैविशम की तरह जिन्दगी नष्ट कर रही हो। उसी अतीत में रहकर, स्मृतियों के घेरे में भटकती हुई देवेन्द्र-से दुर्बल मनुष्य के लिए इतना सब—क्यों?"

सोच में डूबी हुई अचला ने कहा, "क्योंकि दुर्बल तो मैं भी हूं। अपने दर्द से मोह-सा हो गया है।" उसकी उंगलियां चम्मच को निरुद्देश्य घुमा-फिरा रही थीं।

"यह बेकार बात है," राजन ने बड़ी ही स्पष्टवादिता से कहा।

अचला ने चौंकी हुई आंखें उठाईं और बहुत धीरे से कहा, "और—मैं फिर आहत नहीं होना चाहती। मुझे डर लगता है।"

चौंकने की बारी राजन की थी, "डर लगता है? पर सभी पुरुष देवेन्द्र नहीं होते। जरा सोचो, जीवन की लहर तुम्हारे पास से टकरा-टकराकर लौटी जा रही है और तुम किनारे खड़ी हो। तुम्हारे साथ समस्या यह है कि तुम सोचती बहुत हो। सोचो मत और सीधे, बेझिझक नदी में कूद जाओ।"

"डूबने के लिए?"

"उहूंक। बचने के लिए। जियो तो पूरी तरह जियो, हर क्षण जियो।"

"पर मैं तो निर्जीव हूं—पूरी तरह मृत।"

चुप राजन अचला की ओर सीधी अविचल दृष्टि से देखने लगा। अचला के हाथ एक असहाय मुद्रा में उठकर गिरे और उसने बहुत विवशता-भरे ढंग से कहा,

"हां, सच......"

"तुम्हारे लिए देवेन्द्र उपयुक्त नहीं था। तुम्हें चाहिए एक ऐसा पुरुष, जो तुम्हें समझ सके, तुम्हारी कमजोरी को अपना बल दे। तुम्हारे शब्दों में, तुम्हें प्राणदान दे। जब तुम ऐसे व्यक्ति से मिलोगी, तो तुम अपने-आप उसे पहचान लोगी। तुम्हारे यह बदलते हुए मूड, सिरदर्द, सब यों, चुटकी बजाते हुए गायब हो जाएंगे। अच्छा, हटाओ इन सब बातों को। आज पिकनिक पर चलोगी ?"

"पिकनिक पर ?" चम्मच छोड़ अचकचाकर अचला ने पूछा।

"हां, पिकनिक पर।" राजन अचला के अचानक यों पकड़े जाने पर मुसकरा उठा।

"पिकनिक पर तो मैं बरसों से नहीं गई।"

"तभी तो।"

अचला कमरे में लौटी। राजन की बातों से उसे सहसा, जो धक्का-सा लगा था, उससे वह अभी सम्हल नहीं पा रही थी। राजन को वह कितना सीधा, भिन्न प्रकार का व्यक्ति समझे थी। राजन ने उसे इस तरह देखा-परखा है, इसपर उसे आश्चर्य था। उस मुसकराते बाह्य के पीछे इतना समझने वाला व्यक्ति है, उसकी इतनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि है ? उसने नई दृष्टि से, राजन की दृष्टि से, अपने को देखा। उसे राजन की इस स्पष्टवादिता पर थोड़ा-सा रोष हो आया। और उसी मनःस्थिति में उसने कपड़ों की तह में दबी एक चटक रंग की साड़ी निकालकर पहन ली। बालों को बांधा, माथे पर गोल बड़ी-सी कुमकुम की बिन्दी लगाई। आए कहीं के मिस हैविशाम कहने वाले, जैसे सिर्फ उनकी नीलू खूबसूरत है। अचला एक क्षण रुक गई, कितना अपरिचित-सा लग रहा था उसका चेहरा—और उतने ही अचीन्हे थे रोष और राजन को गलत प्रमाणित कर देने के वह भाव।

राजन ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा, कार में बैठने से पहले गुलाब की एक कली तोड़कर उसे पकड़ा दी। अचला देर तक उसे सूंघती रही और फिर बालों में लगा ली। न उसने पूछा, न राजन ने बताया कि वह कहां जा रहे हैं।

तीव्र गति से जाती कार में अचला का मन उड़ने लगा। मन हो आया कि कार चलती ही रहे, बाल उड़-उड़कर माथे पर आते जाएं, हवा गालों, गले को गुदगुदाती रहे, साड़ी का आंचल रह-रहकर फड़फड़ा जाए। उस क्षण अचला

वर्षों की निद्रा के बाद धीरे-धीरे जागी, कुहासा भेदकर उसकी आच्छन्न चेतना लौटी। उसे लगा कि उसका हर रोम फिर से सांसें लेने लगा है। वह जीवित है। उसने मुड़कर राजन को देखा। पहली बार देखा एक नये बोध से राजन का गोरा चेहरा; माथे से ऊपर संवारे गए बाल, उसकी घनी भौंहें, सामने सड़क को देखती सीधी आंखें—उसकी नाक, उसके ओठ, उसकी ठोडी में हलके-से गड्ढे का आभास, उसकी कमीज का बढ़िया कालर, उसकी मेरून टाई, स्टीयरिंग व्हील पर रखे हाथ, लम्बे गोल नाखून, उंगलियां—बायीं कलाई में घड़ी, जिसकी सेकण्ड की सुई अचला के हृदय की गति के साथ आगे बढ़ रही थी। बहुत बरसों बाद अचला ने किसी पुरुष को इस तरह देखा।

"इतने गौर से क्या देख रही हो, अचला?" राजन ने पूछ दिया।

अचला हड़बड़ा गई, "आपके माथे पर यह दाग कैसा है?"

"बचपन में गिर पड़ा था। बहुत शैतान था मैं।" राजन ने बताया। कुतुब-मीनार के पास पहुंचकर राजन ने कार रोकी। एक छायादार वृक्ष के नीचे राजन ने सामान उतारकर रख दिया। छोटी-सी शतरंजी बिछाकर अचला ने खाने का सामान लगा दिया। कई तरह के सैण्डविच, फल, मेवे। थर्मस में गर्म कॉफी। खा-पीकर राजन कुछ दूर टहलता हुआ निकल गया और सामान समेटकर एक किनारे रख अचला वहीं लेट गई, बांह का तकिया लगाकर। अधखुली आंखों से नीला आकाश, कुतुब मीनार पर चढ़ते बच्चे देखती रही। पत्तों से छनकर आती धूप उसके शरीर को हलका-हलका सेंक रही थी। अचला के मन की गांठों का कसाव ढीला होने लगा। उसने मानसिक कपाट बन्द कर लिए और उस क्षण कुछ भी न सोचना चाहा। कि इसी तरह हरी घास पर, लेटी रहे। मन सोए, पर इन्द्रियां जागें—आंखें देखती रहें आकाश का नीलापन, कुतुबमीनार की ईंटों की लाली। बच्चों का शोर, सड़क से गुजरती सारी बसों की घर्र-घर्र कानों में पड़ती रहे। हाथ दुखने लगा तो उसने बिना सोचे ही, पास में उतारकर रखा राजन का कोट सिर के नीचे लगा लिया। करवट ली, तो उसकी सांसों में बरसों बाद पुरुष-शरीर की अपनी विशिष्ट गन्ध भर गई, तम्बाकू, पसीने और अनाम हलकी-सी सुगन्ध, सूखी धरती पर पानी की पहली बौछार-सी चिर प्रिय, चिर नूतन। अचला को जैसे किसी भूले गीत की कड़ी याद आ गई। उसके आगे फिर देवेन्द्र आ खड़ा हुआ, वह झटके से उठ बैठी। राजन का कोट ठीक से तह किया। बाल ठीक किए और

साड़ी की सलवटें मिटाने लगी। तब तक राजन भी आ गया। उसे तैयार देखकर पूछा, "वापस चलें ?"

"चलिए।" अचला उठ खड़ी हुई।

दोनों के मध्य में सुखद मौन था, बिना कहे, बिना जाने, दोनों के सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन आ गया था। न राजन नीलू का पति मात्र रहा था, न अचला नीलू की मित्र। नीलू को बीच से हटा, दोनों एक-दूसरे को पहचान रहे थे।

बदली फिर घिर आई। लगातार कई दिन से रह-रहकर ऐसे ही बादल बरसते जा रहे थे, थोड़ी बूंदें पड़ जातीं। ठण्डक बढ़ जाती। थकी नीलू अपने कमरे में सो रही थी। अचला ने उसकी शाल उठाकर ओढ़ ली और बाहर चली आई। ठण्डी हवा के झोंके से पहले तो उसके रोएं खड़े हो गए, पर बाद में उसे वह स्पर्श बहुत प्रीतिकर लग उठा। हल्की-हल्की बूंदें पड़ रही थीं। अचला ने मुंह ऊपर किया—बूंदें कभी माथे, कभी आंखों पर आ-आकर गिरने लगीं। कहीं कुछ शब्द न था, केवल पत्ती की सरसराहट और अचला के अपने दिल की धड़कन। अचला ने कन्धों पर शाल कस ली—पर उसका मन हो रहा था कि यों ही खड़ी-खड़ी भीगती रहे—

"अचला—" पीछे से राजन का कण्ठ सुन वह चौंकी। "क्या कर रही हो अचला ?"

"टहल रही हूं।"

"इस पानी में ? सर्दी लग जाएगी।"

"आप भी तो बूंदों में खड़े हैं।"

"मेरी बात कुछ और है।"

"और क्या ?"

"मैं पुरुष हूं। स्वस्थ और सबल।"

अचला मुसकराई, "बड़े स्वस्थ और सबल। मैं कौन कम हूं ?"

"वह तो मैं जानता हूं।" राजन के स्वर से चौंक अचला उसे अविश्वास से देखती रह गई, फिर वह मुड़ी और घर की ओर चलने लगी।

"बस—इतने से ही डर गई। देख लिया तुम्हारा साहस"—राजन ने हंसकर

कहा। अचला ने पाया, वातावरण का तनाव अचानक ही कम हो गया है।

"चैलेंज कर रहे हैं। चलिए, उस खम्भे तक चलेंगे।"

"चलो।"

हवा का वेग अचानक ही बढ़ गया। अचला की शाल का कोना बार-बार उड़ने लगा। उसकी धोती बार-बार पैरों में उलझने लगी। सड़क पर अंधेरा-सा था, कभी-कभी कोई मोटर या टैक्सी निकल जाती। बिजली के खम्भे तक पहुंचते अचला थक गई। दिन में पेड़ के नीचे एक लड़का साइकिलों की मरम्मत किया करता था। इस वक्त भी उसकी बेंच रखी थी और पेड़ के नीचे होने के कारण अपेक्षाकृत सूखी थी। अचला उसीपर बैठ गई। राजन ने उस बेंच को दृढ़ रखने के लिए अपना पैर उठाकर रख लिया। कुछ दूर खम्भे का प्रकाश अचला के भीगे मुंह पर पड़ रहा था। अचला अपना मुंह पोंछने लगी। राजन ने देखा—उसके पीले गालों पर झुकी पलकें और बरौनियों की वक्र पंक्ति, उसके चेहरे की आर्द्र स्निग्धता।

"एक बात कहूं, अचला?"

"कहिए।" उसने आंखें ऊपर कर राजन को देखा।

"तुम्हें कभी किसीने बताया है कि तुम सुन्दर हो?"

अचला ने उसकी आंखों में जो पाया उससे वह स्तब्ध, मौन रह गई।

"तुम सुन्दर हो, अचला। बहुत सुन्दर।" राजन ने कहा।

उसकी प्रतिध्वनि-सा एक दूसरा कण्ठ कह उठा, "नीनू, मुझे प्यार भी मिला तो तुम्हारी-सी सुन्दर लड़की का—"

अचला ने ओठ भींच लिए। राजन ने एक बहुत सुन्दर शाप के जादू को तोड़ दिया था।

अचला राजन की आंखों के भाव पहचान रही है। धुली पत्तियों से फिसलकर बूंदें उसपर टपक जाती हैं। अचला के मन में कुछ चक्कर काटने लगता है: पानी में भीगी चमकती सड़क, दूर-दूर तक कहीं कोई नहीं, सिर्फ वह और राजन —और तब नीनू ने जो कुछ भी उसके साथ किया, उसकी पीड़ा अचानक मिट गई। वह नीलू से बहुत बड़ी, बहुत ऊपर हो गई। वह मुक्त हो गई है उस शाप से, उस कचोट के बन्धन से, क्योंकि राजन की आंखों ने उससे कहा है कि वह सच-मुच सुन्दर है।

राजन की स्थिर, अचंचल दृष्टि से अचला की आंखें बंधकर रह गईं। पारिजात पुष्पों-सी कोमल सुवासित बूंदें उसपर झरती रहीं। राजन की हथेलियां ठण्डी हैं, अचला का शरीर उस स्पर्श से थरथराने लगता है—उसकी झिझकती उंगलियां आगे बढ़कर उसके माथे का दाग छूती हैं। "अचला"—राजन का रुद्ध कण्ठ उसे पुकारता है।

'और मैंने सोचा था कि मैं मर चुकी हूं।' अचला के मन में यह विचार कौंध गया। अचानक ही जब राजन उसके इतना निकट था, उसके आगे दो आंसू-भरी आंखें आ गईं। उसे लगा कि बांसों की चुभीली पत्तियों पर लेटकर कोई अभी-अभी रोया है, उसकी सिसकियां अब भी वातावरण में भटक रही हैं। असीम सुख के उस क्षण में भी अचला ने स्पष्ट रूप से अनुभव कर लिया है कि इस मोहबंध को तोड़कर उसे जाना ही है क्योंकि वे भीगी आंखें उसकी अपनी हैं।

छुट्टी का दिन

पड़ोस के फ्लैट में छोटे बच्चे के चीख-चीखकर रोने से माया की नींद टूट गई। उसने अलसाई पलकें खोलकर घड़ी देखी, पौने छः बजे थे। फिर उसे याद आया, आज तो छुट्टी का दिन है। उसने पैर फैला लिए। पलकें आंखों पर ढलक आने दीं। वह रेशमी चादर का नरम चिकना स्पर्श गालों पर महसूस करती हुई पड़ी रही। नींद की मीठी खुमारी अब भी उसपर छाई थी। खुली हुई खिड़की से सवेरे की ठंडी हवा आ रही थी, पूरी तरह से जगी होने पर भी नींद को बहलाकर फिर बुलाना चाह रही थी। पर वह बच्चा था कि रोए ही जा रहा था। छोटा-सा कोमल गोरा-गोरा बच्चा! गोल मुंह पर भवों की पतली-सी लकीरें, लम्बे-लम्बे रेशमी पलक। जब क्रोधित होकर रोता था तो गोल-गोल आंसू गालों पर आ फिस-लते थे और सारा काजल अपने साथ बहा ले जाते थे।

छुट्टी का दिन माया के लिए पहाड़-सा होता था, सप्ताह-भर जो काम टालती आती थी कि उन्हें खत्म करके भी इतना समय बच जाता था कि खीझ उठती थी। और जब भाई-बहनों के साथ घर पर रहती थी तो समझ भी न पाती थी कि इत-वार कब आया और कैसे पंख लगाकर उड़ गया।

रोज की तरह आज भी चंती दरवाजे पर धक्के देने लगी। तकिये में मुंह गड़ाकर माया ने अनसुनी करने की चेष्टा की पर लगातार धक्कों के साथ चंती ने "बीबीजी" की पुकार लगानी शुरू कर दी तो माया ने ठंडी सांस ली, चादर हटा-कर आंखें मूंदे ही मूंदे, उसने टटोलकर पैर स्लीपरों में डाले और दरवाजे की तरफ बढ़ी, अभ्यस्त उंगलियों ने चटखनी गिरा दी और सवेरे-सवेरे चंती का मुंह न दीख जाए, इसलिए वापस मुड़कर अपने बिस्तर पर आ गिरी। उसका मन चंती को भरपूर डांट लगाने का हो रहा था, पर पलकों पर अभी भारीपन था। इसलिए वह चुप ही रही। चंती ने पहले नल खोलकर बर्तन उसके नीचे डाल दिए और गुनगुनाती हुई झाड़ू लगाने लगी।

तव माया उठकर वैठी। हाथ फैलाकर अंगड़ाई ली, फिर ज़ोर से कहा, "सोने
ों दिया न? क्यों चैती ?"

धोती का पल्ला कमर में खोंसे झाड़ू हाथ में लिए पर्दा हटाकर चैती ने दर्शन
दए। कहा, "सोती काहे नहीं ?" और पर्दे के पीछे गायव हो गई।

माया उठकर खिड़की के पास आई। इधर-उधर के फ्लैट्स में हलचल हो रही
थी। एक तरफ दूधवाला अपनी वाल्टी में मैला गन्दा हाथ वार-वार डालकर दूध
नाप रहा था। हर वार नाप का वर्तन वाल्टी से टकराता और फिर लोटे में दूध
गिरने की आवाज़ के साथ दूध वाले का मोटा खरखराता कंठ कहता, चार—
पांच—छः।

माया ने गुसलखाने में जाकर वेसिन में नल खोल अपने हाथ उसके नीचे कर
दिए। पानी की तेज़ और ठण्डी धार हाथों पर पड़ती रही। चौके से चैती की खट-
पट सुनाई देती रही। माया ने गीत की एक कड़ी गुनगुनाने का प्रयत्न किया, पर
आवाज़ वेसुरी हो गई। उसकी आंखें वेसिन के ऊपर लगे शीशे में अपना प्रतिविम्व
देख रही थीं, सूना मुंह, सूनी आंखें। एक क्षण को उसे लगा कि यह प्रतिविम्व
किसी और का है। वह स्वयं कैसे इतनी थकी, इतनी टूटी-सी हो सकती है। शीशे
के अन्दर से वह अनजान-सी युवती, माया को, जैसे पहचानने की कोशिश कर
रही हो, ऐसे देखती रही, जव तक कि माया ने भीगे, असहाय, विवश हाथों से अपने
वाल छूते हुए दृष्टि हटा न ली। उजले, सफेद वेसिन के किनारे पानी की वूंदे
फिसल रही थीं। माया की आंखें उस एक वूंद पर टिक गईं, जिसे सूरज की पहल
किरन ने इन्द्रधनुषी रंगों से सजा दिया था। वूंद हिली फिर चिकने वेसिन प
फिसलती हुई पानी की धारा में मिल गई।

माया ने रुकी हुई लम्वी सांस वाहर आ जाने दी। फिर अपने पर जैसे क
पा, दोनों हाथों से अंजुलियां भर-भर अपने मुंह पर ज़ोर से छींटे देने लगी। उ
तरह पानी भरती और मुंह पर उछाल देती, विना कुछ सोचे, विना कुछ सोचने
यत्न किए।

फिर उसने नल वन्द कर दिया। तौलिया उठाई और उसके नरम-नरम
में अपना मुंह छिपा लिया। कुछ देर वाद उसने हाथ वढ़ाकर तौलिया स्टै
फेंक दी। तौलिया ज़मीन की ओर तेज़ी से गिरी, पर तभी खूंटी में उसका
फंस गया और वह झूलती रही, धीरे-धीरे वेवस-सी, पर माया ने उधर नही

वह फिर पंजों पर जोर दे शीशे में झांकने लगी थी, एक अदम्य आशा लिए कि शायद इस बार वह झांकने वाली युवती पहले से भिन्न हो और वह कुछ भिन्न थी भी, आखें कुछ ज़रा-सी फैली थीं बरौनियों में, भौंहों में चिकना मीलापन था, उजले कोयों में बड़ी-सी तरल पुतलियां, ओठों में कोमलता, माया के देखते-देखते वह खिंचे और खुल गए। उस छोटी-सी मुस्कान ने सारे चेहरे पर एक कमनीय स्निग्धता ला दी। माथे को घेरे हुए जो बालों की लटें थीं, उनमें कुछ बूंदें उलझी थीं, माया ने गर्दन मोड़ी तो कनपटी के पास···एक बूंद में उसे रंग दिखाई दिए, ढर सारे रंग, चमकते हुए, झिलमिलाते हुए, तड़पते हुए, कहीं वह गिर न जाए इस डर से माया शीशे के आगे से हट आई। दरवाज़ा खोला और कमरे में आकर कुर्सी पर पैर उठाकर बैठ गई। हाथ गाल पर टिकाकर सोचा, और अब?

वैसी पास की मेज़ पर चाय पहले ही रख गई थी। रोज़ की तरह मोटे, बेडौल, बेढंगे, कहीं गीले, कहीं कड़े, टोस्ट थे, रोज़-रोज़ का सुनहरी धारी वाला नाज़ुक प्याला था, वही कढ़ी हुई कोज़ी थी, जिसपर एक चिड़िया पंख खोलकर उड़ने को तैयार थी। पर उड़ेगी नहीं, उड़ सकती भी कैसे थी? उसे देखकर माया का मन एक निरर्थक आक्रोश से भर उठा था। उसका मन हुआ कि पैर से ठोकर मारकर मेज़ उलटा दे और सारे बर्तन खनखनाकर ज़मीन पर जा गिरें। चीनी के बर्तनों के टूटने की आवाज़ कितनी प्रिय होती है! पर मन में उसके मूल्य का अंदाज़ा लगा और यह सोच कि बेकार में नये खरीदने पड़ेंगे, उसने करने को रोक लिया और प्याले में चाय उड़ेलने लगी।

गरम चाय को गले से उतार वह फिर खिड़की के पास आकर खड़ी हो गई। नीचे सड़क थी, कहीं-कहीं तारकोल छूट जाने के बड़े-बड़े धब्बे थे। कहीं गड्ढे गई थे। अगर किसी तांगे का पहिया उसमें फंस जाता तो चाबुक फटकारकर तांगेवाला एक गाली दे उठता, अगर रिक्शे का पहिया होता तो रिक्शेवाला ज़ोर लगाकर निकलने की कोशिश करता और अगर तब भी न निकलता तो सवारियों को उतरना पड़ता। इस बाधा से उनके चेहरे रोष से लाल हो जाते और बाद में मैले अंगोछे से माथा पोंछता रिक्शावाला, और सवारियां सड़क की ऐसी हालत पर दुख से सिर हिलाते नज़रों से दूर हो जातीं। सड़क के उस पार एक इमारत थी, ऊंची-सी, पुरानी-सी, जिसे मरम्मत की सख्त ज़रूरत थी, सड़क की तरह टूटी थी, जिसपर एक्ज़िमा की सना छाई हुई थी और चींटियों की कतार देखी इमारतें।

गहरे बैंगनी रंग में फूलती हुई घनी बेगमवेलिया थी। अपने वैभव में लचकती, मती, वल खाती। जव हवा आती तो माया अपनी खिड़की से उनसे बैंगनी रंग के ल टूट-टूटकर उड़ते हुए देख सकती थी। उन तीन पंखुड़ियों के फूलों में कितना ग था, कितनी मृदुता, पर माया के दिल में वह एक घनी पीड़ा भर जाते थे। इस वक्त सूरज की किरणें बेगमवेलिया पर पड़कर उसके रंग को और चटकीला बना रही थीं। सुबह की हवा से कभी-कभी कोई फूल नीचे भटककर आ गिरता था।

माया उसमें डूबी हुई थी, रमी हुई थी, हाथ खिड़की पर टिके थे, आंखें सामने, उसने नहीं जाना कि कब चैती आई। जब पायदान के पास बैठकर उसने दो बार झाड़ू, जमीन पर पटकी तो उसने आंखें हटाईं। वह कल्पना और स्वप्न थे, यह कमरा, ये दीवारें, यह बन्धन, जीवन और सत्य।

मालकिन का ध्यान अपनी ओर आकर्षित हुए देख चैती ने कहा, "खाएका का बनिहै?"

इतवार का दिन है, छुट्टी का दिन, आज तो कुछ विशेष खाना बनाना चाहिए, चैती को स्वामिनी का खोयापन अच्छा नहीं लगा।

"न खावे का शौक न पहिरे का!" सिर हिलाते हुए उसने जो झाड़ू पटकी तो लाख की एक चूड़ी चट से टूट गई। उसके टुकड़े बीनते हुए चैती ने कहा, "का बनाई?"

"कुछ भी बना लो।" माया ने उदासीनता से कहा।

"खिचरी डाल देई?" व्यंग से चैती ने पूछा।

"अयं खिचड़ी......वही बना दो।" माया ने कहा।

तब चैती ने कहा, "ऐ बिटिया। तोहार अस परानी हम नाहीं देखा, न कब कछू खायें न बनवायें। हमहूं आदमी हन। हमरो मन है, हम खीर-पूरी खाव कहै देइत है। दूध हम लै लिया है।"

चैती ढीठ हो गई, पर माया ने कुछ नहीं कहा। हटकर चली आई और कप की अलमारी खोली, कुछ रेशमी कपड़े धोने के लिए सप्ताह-भर से रक्खे थे, उ बाहर किया, और जाकर गरम पानी में साबुन घोलकर डाल दिए, अनमनी हो फिर आकर अपनी मेज पर बैठ गई। एक ओर कापियां रखी थीं। उनपर की गहरी परत थी। माया ने लाल पेंसिल उठा ली, धूल झाड़कर एक कापी खो गलतियों पर गहरे लाल निशान लगा दिए, पर मन उसमें भी नहीं लगा। मे

बढ़ाकर पास की छोटी मेज पर से अखबार उठा लिया, खोला।

अचानक ही वह कुर्सी खिसकाकर उठ खड़ी हुई, घड़ी पर नजर डाली तो पाया कि बड़ी आसानी से दस बजे की फिल्म देखी जा सकती है। जाकर फिर अलमारी खोली। कुछ सोचकर एक साड़ी निकालकर पलंग पर रख दी और तैयार होने लगी। अभ्यस्त हाथों ने बाल ठीक किए। पाउडर लगाया। कुछ देर अपने को देखती रही और फिर लिपस्टिक उठाकर अपने ओंठ, खूब गहरे लाल कर लिए। कपड़े बदले और चेती से कहा, "मैं सिनेमा जा रही हूं।"

चेती ने पूछा, "कब तक आइहो ?"

"यही बारह-साढ़े बारह तक," और पर्दा उठाकर बाहर आ गई। खुली खिड़की से हवा आई और अखबार के पृष्ठ उड़कर फर्श पर जा गिरे, खुली कापी के पेज सरसराते रहे, मेजपोश का कोना हिलता गया।

और हाल में बैठी माया को लगा कि जिस अकेलेपन से बचना चाहकर वह सिनेमा चली आई थी, उससे निष्कृति कहां हुई ? अभी उसकी नितान्त अकेले बैठकर सिनेमा देखने की आदत नहीं हुई थी, कुछ विचित्र और अटपटा-सा लग रहा था। इंटरवेल में उसने एक उड़ती-सी नजर से इधर-उधर देखा तो पाया कि कालिज की संस्कृत टीचर मिसेज भारद्वाज भी कुछ दूर बैठी हैं, उन्होंने भी माया को देखा और हाथ हिलाकर पास बुलाया। माया को उनका साहचर्य विशेष प्रिय न था पर यह सोचकर कि एक से दो भले, उठकर उनके पास चली गई।

"अकेली ही हो ?" प्रश्न हुआ। मिसेज भारद्वाज की तीव्र दृष्टि माया पर थी।

"जी।"

"आज तो तुम पहचानी नहीं जा रही हो," कुछ व्यंग्य से मिसेज भारद्वाज ने कहा।

उत्तर में माया ने मुस्करा-भर दिया।

तभी एक वयस्क-से सज्जन उसकी ओर देखते हुए पास आ गए। मिसेज भारद्वाज ने कहा, "यह मेरे पति हैं, मि० भारद्वाज। आप मिस महल…हमारे कालेज में हिन्दी पढ़ाती हैं।" मि० भारद्वाज ने नमस्कार किया और पासवाली सीट पर बैठ गए। कुछ वार्तालाप करने का प्रयास करते हुए पूछ दिया, "अभी ही आई हैं आप ?"

कुंठित हो माया ने कहा, "जी।"

पत्नी की ओर उन्मुख होकर पूछा, "चाय वगैरा कुछ मंगवाऊं ?"

"मंगवा लें। यह साड़ी बड़ी प्यारी है ! यहीं से ली है ?" मिसेज भारद्वाज ने पूछा।

"मदर ने भेजी है।"

"आपका घर यहां नहीं है ?" मि० भारद्वाज को जैसे कुछ बात करने का विषय मिला।

"जी नहीं," और फिर कहा, "लखनऊ में है।"

"वहां से आप यहां आईं ? इस छोटे शहर में ?"

माया की मुस्कान अनजान में ही विषादपूर्ण हो गई। कहा, "यहां आसानी से नौकरी मिल गई।"

"आपको कभी पहले नहीं देखा।"

पति को धीरे-धीरे खुलते देख मिसेज भारद्वाज ने कुछ चेतावनी के से स्वर में कहा, "यह नई आई हैं इसी साल।"

बेयरा के चाय ले आने से व्यवधान पड़ा। माया ने अभी एक घूंट ही चाय पी थी कि हाल की रोशनी बुझ गई। उसके उठने का उपक्रम करने पर मिसेज भारद्वाज ने बांह पर हाथ रखकर रोकते हुए कहा, "यहीं बैठी रहो न !" माया फिर बैठ गई, पर उसका मन हो रहा था कि वह मिस्टर और मिसेज भारद्वाज के बीच की सीट से उठ इधर मिसेज भारद्वाज के पास बैठ जाय पर यों उठ जाना अभद्रता होती। मि० भारद्वाज शालीनता से बैठे रहे। कभी भूल से भी उनकी कोहनी या कन्धा माया से नहीं छुआ, पर कुछ हंसी की बात पर उनका ज़ोर से, खुलकर हंसना माया को खटक जाता था, आखिर ऐसा ठहाका कि हाल गूंज जाए, लगाने की क्या ज़रूरत ? बीच में माया ने अपने को झिड़का भी, कि इस ज़रा-सी बात पर वह बेकार ही मन-ही-मन क्यों कुढ़ रही है।

फिल्म अधिक लम्बी न थी। जब समाप्त हुई तो माया ने मानसिक यातना से छुटकारा पाया। शिष्टता के साथ, जितनी जल्दी उनसे छुट्टी ले सकती थी, लेकर माया अलग हुई, पर अभी उसका मन घर आने को न हुआ। सड़क के एक किनारे खड़े होकर कुछ देर सोचा कि और क्या किया जाए। ध्यान आया कि रिश्ते के एक भाई यहीं कहीं आसपास रहते हैं और माया के न आने का कई बार

उलाहना दे चुके हैं। उनके घर आधा घंटा बिता आया जाए। पर्स में एक स्लिप पर उनका पता लिखा था, उसे ढूंढकर निकाला।

घर उनका आसानी से मिल गया। बांसों को बांधकर एक घेरा-सा बना दिया गया था। कुछ सूखे-सूखे टमाटर के पेड़ और कुछ गेंदे फूल रहे थे। माया ने दरवाज़े पर थपकी दी। कुछ देर में एक महिला अन्दर से झांकी, अन्दाज़ से सोच-कर कि यही भाभी होंगी, माया ने नमस्कार कर कहा, "चन्दन भाई साहब हैं? मैं माया हूं।"

भाभी उत्तर में मुसकराईं और दरवाज़ा खोलते हुए कहा, "आइए।"

कमरे में एक गन्दी-सी निवाड़ का पलंग पड़ा था, पास ही चारपाई थी, जिस पर बिस्तर बिछा था। एक गीली-सी गद्दी भी थी और सिरहाने छोटे बच्चे के कुछ कपड़े।

"बैठिए।"

माया पलंग की पट्टी पर बैठ गई, भाभी की धोती मैली थी और उसमें से घी की तेज़ महक आ रही थी।

"आपने मुझे पहचाना न होगा। चन्दन भाई साहब की चाची हैं न···वह मेरी बुआ लगती हैं।"

सम्बन्ध जानकर भाभी ने कहा, "ओ बांदे वाली सासजी की आप भतीजी हैं! इन्होंने ज़िक्र तो किया था।"

"कहां हैं भाई साहब?" माया ने पूछा।

"आज इतवार है, घूमने चले गए हैं।" उत्तर मिला।

"कब तक लौटेंगे?" फिर यह देख कि वह अभी खड़ी ही है, माया ने कहा, "आप भी तो बैठिए।"

"चूल्हे पर तरकारी चढ़ी है।" और उसका ध्यान आते ही भाभी बोलीं, "अभी दो मिनट में आई।" कहकर कमरे से चली गई। माया उसी तरह पट्टी पर बैठी निरुद्देश्य इधर-उधर देखती रही। कमरे के बाद बरामदा था और उसीके निकट शायद चौका, क्योंकि कड़ाई में करछी चलने की आवाज़ साफ सुनाई दे रही थी। फिर एक छनाका हुआ, शायद पानी डाला गया और फिर हाथ में दरी लिए भाभी आईं और कहा, "उठिए, इसे बिछा दूं तो आराम से बैठिए।"

दरी बिछाते हुए कहा, "आज तो आपकी छुट्टी होगी, इतवार है।"

"जी।"

"आपको तो खूब अच्छा लगता होगा।"

प्रश्न सुन माया कुछ देर चुप रही, फिर कहा, "जी हां, लगता तो है। वैसे तो कालेज का ही काम रहता है। कभी-कभी इधर-उधर चले गए, सिनेमा वगैरा। अब सिनेमा से ही आ रही थी, सोचा कि मिलते चलें।"

बड़ी हसरत से भाभी ने कहा, "अकेले रहने में तो यह है ही, जो मन आया, कर लिया। शादी से पहले मुझे सिनेमा देखने का बड़ा चाव था, मेरे एक चाचा गेटकीपर थे, सब मुफ्त में देखते थे, पर अब तो साल-डेढ़ साल से कोई सिनेमा ही नहीं देखा। मुन्ना छोटा है, घर में कोई है नहीं। छोड़ूं भी किसपर? कौन-सी फिल्म देखी आपने?"

माया ने फिल्म का नाम बताया।

"अंग्रेज़ी की थी।" भाभी बड़ी सचाई से बोली, "भई हमें तो कुछ समझ में नहीं आती। दो-एक बार गए भी, पल्ले कुछ नहीं पड़ा," फिर रुककर भाभी ने पूछा, "आप तो शायद बी० ए० होंगी?"

"जी नहीं, एम० ए०," आहिस्ता से माया ने कहा। भाभी ने एक लम्बी सांस ली, कुछ कहने को मुंह खोला, फिर रुक गई। बात बदलकर कहा, "खाना परस लाऊं, आपके लिए?"

"जी नहीं, नौकरानी ने बनाकर रखा होगा। अब मुझे चलना चाहिए।"

"कुछ देर तो रुकिए।" भाभी के स्वर में कुछ विशेष आग्रह नहीं था। माया जैसे एकदम उकता गई। उठती हुई बोली, "अब चलूं, भाभी जी, कभी हमारी तरफ भी आइए।"

"कहूंगी उनसे, लाना न लाना उनके हाथ है।"

भाभी ने जल्दी से हाथ जोड़ दिए।

बाहर निकलते हुए माया को लगा कि वह बेकार ही आई, भाभी को शायद काफी काम हो, पहुंचकर बाधा दी। घड़ी पर नजर डाली, सवा बारह बजे थे। कुछ-कुछ भूख भी लग आई थी। बांस का फाटक खोलकर बढ़ी ही थी कि चन्दन से भेंट हो गई।

"अरे वाह, माया! किधर जा रही हो?"

पकड़े जाने पर माया ने रुककर कहा, "घर जा रही हूं। आई थी, आप मिले

ही नहीं।"

"अब तो मिल गया। चलो, चलो, अन्दर चलो। अपनी भाभी से मिलो।"

"जी, भाई साहब, अभी माफी चाहती हूं। फिर आऊंगी।"

पर वह नहीं माने और बेतकल्लुफी से उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "नहीं, बिना खाना खाए नहीं जा सकोगी।"

माया ने हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया, पर चन्दन हाथ पकड़े-पकड़े ही अन्दर तक ले गए और ज़ोर से पुकारकर कहा, "सुनो, एक मेहमान आए हैं।" भाभी चौके से बाहर आईं और देखा, फिर कहा, "मैंने तो पहले ही रुकने को कहा था," फिर माया के मुख की ओर देखकर बोली, "हाथ तो छोड़ दो बेचारी का।" उसके कहने का ढंग ऐसा था कि चन्दन ने तुरन्त उसका हाथ छोड़ दिया, फिर कुछ अपराधियों की तरह कहा, "खाने का इन्तज़ाम करो।"

"हो रहा है।" रुखाई से कहकर वह वापस चली गई। चन्दन और माया ने स्पष्ट रूप से महसूस किया कि उसे प्रसन्नता नहीं हुई है।

माया ने फिर कहा, "भाई साहब, बेकार झंझट होगा, मेरी नौकरानी इन्तज़ार कर रही होगी।"

"झंझट क्या? खाना अभी बना जा रहा है।" स्वर ऊंचा कर उन्होंने पत्नी को पुकारा, "सुनो, ज़रा जल्दी कर दो।"

अन्दर से उत्तर आया, "कर रही हूं। पहले ज़रा मुन्ने को नहला दूं।"

तब माया जाकर उधर खड़ी हो गई, कहा, "भाभीजी, आपको परेशानी हो रही है, मैंने तो कहा था—"

भाभी धूप में बैठकर बच्चे को नहलाने की तैयारी कर रही थी। माया को भूख लगने लगी थी। जहां वह खड़ी थी, वहीं से झांककर देखा, चूल्हा खाली था। बच्चा चीख-चीखकर रोता रहा, भाभी उसे साबुन लगाती रही। उसके ढंग से लग रहा था कि जैसे आज ही रगड़-रगड़कर बच्चे को गोरा कर देगी। माया बैठी-बैठी अपने को कोसती रही कि किस क्षण में उसने यहां आने को सोचा। आखिरकार भाभी ने बच्चे को पोंछकर कपड़े पहनाए और कपड़े पहनाकर पालने में लिटा दिया और कहा, "ज़रा दही ला दीजिए, रायता बन जाएगा।"

"नहीं नहीं," माया ने जल्दी से कहा, "रायते की कोई ज़रूरत नहीं।"

पर भाभी ने नहीं सुना। चन्दन भाईसाहब दही लाने को भेज दिए गए, भाभी

चौके में जाकर खटर-पटर करने लगी। बच्चा रोता गया, माया ने उठकर उसे गोद में ले लिया। हिलाया, डुलाया, तो वह चुप हो गया। उसे कन्धे से लगाकर माया ने बरामदे में कई चक्कर लगाए, फिर देखा, वह सो गया था, धीरे से लिटाया तो फिर वह जग गया। उसके चीखने से पहले ही माया ने उसे फिर कन्धे से लगा लिया और टहलने लगी। घूमते-घूमते उसके पैर थक गए, कन्धा दुखने लगा पर भाईसाहब दही लेकर नहीं लौटे। भाभी रोटी बनाने का सारा आयोजन कर चूल्हे के पास चुपचाप बैठी थी। माया से कहा, "देखा, जहां जाते हैं वहीं के हो रहते हैं। दो कदम पर बाज़ार है।" फिर एकाएक उठती हुई बोली, "जानें कब तक आएंगे, मैं नहा लूं। आप कहें तो आपको खाना परस दूं।"

"भाई साहब को आ जाने दीजिए।" माया ने कहा।

भाभी उठकर अन्दर गई। गुसलखाना बन्द किया ही था कि भाईसाहब आ गए। प्रश्न-भरी दृष्टि से इधर-उधर देखा। माया ने अपने-आप ही कह दिया, "नहाने गई हैं।"

"नहाने गई हैं? यह नहाने का टाइम है, ? इनके सब काम उलटे होते हैं।" कहकर दही उन्होंने रख दिया और बाहर से कुण्डी खड़काई। भाभी चुप रही। माया ने बच्चे को पालने पर लिटा दिया। इस बार वह सोता ही रहा। वह थकी थी और भाईसाहब झुंझलाए, दो-एक बात कर दोनों चुप हो गए, और प्रतीक्षा करते रहे कि कब भाभी निकले।

भाभी साफ-सुथरी धोती पहनकर बाहर आई, माथे पर बिन्दी लगाई। मांग से सिन्दूर छुआया। बिना किसी जल्दी के धीरे-धीरे चौके में आकर बैठ गई। रायता बनाया। चूल्हा फूंका। फिर उसने पूछा, "कहां खाएंगे? चटाई बिछा लें। वह रखी है कोने में।"

माया ने चटाई बिछा ली, सेंडिल उतार डाले, हाथ धोकर चौके में गई, और थालियां उठाकर बाहर ले आई। दाल एकदम ठण्डी और पतली थी। रायते में काफी ज़्यादा नमक। माया को बरबस चैती की बनाई नरम-नरम पूरियां और मेवे की खीर की याद आ गई। खाने के बाद कुछ देर वह और बैठी। जब भाभी स्वयं भी खा चुकी, तब वह विदा लेकर आई।

चैती शायद इन्तज़ार करते-करते थककर चली गई थी। माया नें अपने पास की दूसरी चाभी से ताला खोला, घड़ी की सुइयां तीन पार कर चुकी थीं। कमरे

की छांह में मधुर शीतलता थी। माया ने सैंडिल उतार दिए। पर्स कुर्सी पर डाल दिया और चौके की तरफ गई। खाना सब ढंका रखा था। पूरियां, सूखी मटर, दम आलू तथा गाढ़ी मेवे की खीर। लगता था कि चैती ने भी खाया नहीं था, कुपित हो भूखी ही घर चली गई थी। माया वहां से गुसलखाने में गई। उसकी आंखें जल रही थीं। सोचा कि ठण्डे पानी से धो ले तब उसकी दृष्टि पड़ी उन कपड़ों पर, जिन्हें गरम पानी और साबुन में डुबाकर वह बिल्कुल भूल गई थी। उसने झपट-कर कपड़े अलग-अलग उठा लिए। एक ब्लाउज़का पीला और हरा रंग निकलकर दूसरी ब्लाउजों और सफेद सिल्क की साड़ी में लग गया था। दोष अपना ही था, फिर भी न जाने क्यों उसे रोना आ गया। रेशमी ब्लाउज़ के कच्चे निकल जाने पर नहीं, बल्कि अपनी जिन्दगी के पैटर्न पर, उसके खोखलेपन और सारहीनता पर। किसलिए वह घर-बार छोड़कर इतनी दूर आकर पड़ी थी, किसलिए वह सुबह से शाम तक कालेज में मगजपच्ची करती थी। इसलिए कि जिन्दगी के दिन एक-एक करके गुजरते जाएं और हर गुजरा हुआ दिन उसके जीवन का खालीपन और भी गहरा करता जाए और एक दिन वह सोचे कि इस जीवन में उसने क्या पाया, तो पता चले कि वह एक लम्बे अनन्त मरुस्थल की तरह था।

माया ने ब्लाउज़ फिर उन्हीं कपड़ों में डाल दिया और आकर औंधी ही पलंग पर पड़ गई।

जब वह जगी तो कमरे में अंधेरा था। धूप न जाने कब की खिड़की की राह चली गई। घड़ी की सुइयां अंधेरे में चमक रही थीं। रोते-रोते सो जाने से उसका सिर बुरी तरह दर्द कर रहा था। इतवार की शाम को चैती नहीं आती थी। माया ने उठकर पानी पिया और कमरे में बत्ती जला दी। मेज के पास जाकर कुर्सी पर बैठ गई। मेज पर कापी खुली पड़ी थी। लाल पेंसिल के निशान चमक रहे थे। माया बहुत देर तक बैठी-बैठी खिड़की से बाहर देखती रही। आसमान में दो-एक तारे निकल आए थे। पड़ोस में दूध वाला बाल्टी खटका रहा था। दूध नापता हुआ, मोटे-से एकरस स्वर में कह रहा था। "दो-तीन···चार···।" सीढ़ियों पर ऊपर-नीचे आते-जाते जूतों की आवाज आ रही थी। गुसलखाने में कपड़े भीग रहे थे। चौके में ठण्डा खाना रखा हुआ था और कनपटी के पास एक शिरा बुरी तरह दुख रही थी।

धीरे-धीरे आकाश काला हो गया। तारों की ज्योति में उज्ज्वलता आ गई।

आने-जाने वालों का रव थम गया, माया एक सांस लेकर उठी। बिजली बुझाकर फिर पलंग पर लेट गई। उसे पता था कि नींद रात में बहुत देर से आएगी। फिर भी आंखें बन्द कर लीं।

कहीं घड़ी ने धीरे-धीरे आठ के घण्टे बजाना आरम्भ किया, माया ने करवट बदली। अगला दिन, काम का दिन······

ज़िन्दगी और गुलाब के फूल

सुबोध काफी शाम को घर लौटा। दरवाज़ा खुला था, बरामदे में हल्की रोशनी थी, और चौके में आग की लपटों का प्रकाश था। अपने कमरे में घुसते ही उसे वह खाली-खाली-सा लगा। दूसरे क्षण ही वह जान गया कि कमरे का कालीन निकाल दिया गया है और किनारे रखी हुई मेज़ भी नहीं है। मेज़ पर कागज़ के फूलों का जो गुलदस्ता रहता था, वह कुछ ऐसे कोण से खिड़की पर रखा था कि लगता था, जैसे मेज़ हटाते वक्त उसे वहां वैसे ही रख दिया गया हो।

उसने बहुत कोमलता से गुलदान उठा लिया। कागज़ के फूल थे तो क्या, गुलदान तो बहुत बढ़िया कट ग्लास का था। पहले कभी-कभी शोभा अपने बाग के गुलाब लगा जाती थी, पर अब तो इधर, कई महीनों से यही बदरंग फूल थे और शायद यही रहेंगे। सुबोध ने फिर खिड़की पर गुलदान रखते हुए सोचा, हां, यही रहेंगे, क्योंकि शोभा की सगाई हो गई थी, और उसका भावी पति किसी अच्छी नौकरी पर था। सुबोध ने कोट उतारकर खूंटी पर टांग दिया···आखिर कब तक शोभा के पिता उसके लिए अपनी लड़की कुंवारी बैठाए रखते ?···सुबोध खिड़की के पार देख रहा था—धूल-भरी सांस, थके चेहरे, बुझे हुए मन···

फिर वह मां के पास आया। उसकी मां चौके में चूल्हे के पास बैठी थी। वह वहीं पीढ़े पर बैठ गया। कुछ देर कोई नहीं बोला। मां ने दो-एक बार उसे देखा ज़रूर, पर कुछ कहा नहीं, पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी रही, ऐसी मूर्ति जिसकी केवल आंखें जीवित थीं।

एकाएक सुबोध पूछ बैठा, "अम्मा, मेरे कमरे का कालीन कहां गया ? धूप में डाला था क्या ?"

बायें हाथ से धोती का पल्ला सिर पर खींचती हुई मां बोली, "वृन्दा अपने कमरे में ले गई है। उसकी कुछ सहेलियां भोज खाने पर आएंगी।"

सुबोध को अपने पर आश्चर्य हुआ कि वह इतनी-सी बात पहले ही क्यों

समझ गया ? उसकी सारी चीजें वृन्दा के कमरे में जा चुकी थीं, सबसे पहल पढ़ने की मेज़, फिर घड़ी, आरामकुर्सी और अब कालीन और छोटी मेज़ भी। पहले अपनी चीज़ वृन्दा के कमरे में सजी देख उसे कुछ अटपटा लगता था, पर अब वह अभ्यस्त हो गया था यद्यपि उसका पुरुष-हृदय घर में वृन्दा की सत्ता स्वीकार न कर पाता था।

उसे अनमना हो आया देख मां ने कहा, "तुम्हारे इन्तज़ार में मैंने चाय भी नहीं पी। अब बना रही हूं, फिर कहीं चले मत जाना।" और पतीली का ढंकना उठाकर देखने लगी।

सुबोध दोनों हाथों की उंगलियां एक-दूसरे में फंसाए बैठा रहा। उसके कन्धे झुक गए और उसके चेहरे पर विषाद और चिन्ता की रेखाएं गहरी हो गईं। सशंक नेत्रों से मां उसे देखती रही। मन-ही-मन कई बातें सोचीं। कहने की, मौन का अन्तराल तोड़ने की, पर न जाने क्यों वाणी न दे सकी। उसकी आंखों के सामने ही सुबोध बदलता जा रहा था। इस समय उसके नेत्र मां पर अवश्य थे, पर वह उनसे हज़ारों मील दूर था। मौन रहकर जैसे वह अपने अन्दर अपने-आपसे लड़ रहा हो। काश, सुबोध फिर वही छोटा-सा लड़का हो जाता, जिसके त्रास वह अपने स्पर्श से दूर कर देती थी। पर सुबोध जैसे अब उसका बेटा नहीं था, वह एक अनजान, गम्भीर, अपरिचित पुरुष हो गया था, जो दिन-भर भटका करता था, रात को आकर सो रहता था। सुख के दिन उसने भी जाने थे। अच्छी नौकरी थी, शोभा थी। अपने पुराने गहने तुड़ाकर मां ने कुछ नई चीज़ें बनवा ली थीं, और अब वे नये बुन्दे और बालियां, हार और कंगन बक्स में पड़े थे। शोभा की शादी होने वाली थी और सुबोध बदलता जा रहा था।

दो धुंधली, जल-भरी आंखें दो उदास आंखों से मिलीं। उनमें एक मूक अनुनय थी। सुबोध ने मां के चेहरे को देखा और मुसकरा दिया। शब्द निरर्थक थे, दोनों एक-दूसरे की गोपन व्यथा से परिचित थे। उनमें एक मूक समझौता था। मां ने इधर बहुत दिनों से सुबोध से नौकरी के विषय में नहीं पूछा था, और सुबोध भी अपने-आप यह प्रसंग न छेड़ना चाहता था।

उसने कहा, "देखो, शायद पानी खौल गया।"

मां चौंकी, दो बार जल्दी-जल्दी पलक झपकाए। फिर खड़ी होकर आलमारी से चायदानी उठाई। उसे गर्म पानी से धोया, बहुत सावधानी से चाय की पत्ती

डाली और पानी उड़ेला। फिर उसपर टीकोज़ी लगा दी। यह टीकोज़ी वृन्दा ने काढ़ी थी और उसकी शादी की आशा में बरसों मां बक्स में रखे रहीं। अब उसे रोज व्यवहार करना मां की पराजय थी। उससे बड़ी पराजय थी सुबोध की, जो अपनी छोटी बहन की शादी नहीं कर पाया था। टीकोज़ी पर एक गुलाब का फूल बना था और सुबोध उन गुलाब के फूलों की याद कर रहा था, जो शोभा उसके कमरे में सजा जाती थी, उन बालों और बुन्दों की सोच रहा था, जो शोभा अब नहीं पहनेगी···

दूध गरम कर और प्याला पोंछकर मां ने सुबोध के आगे रख दी। सुबोध पीढ़े पर पालथी मारकर बैठ गया, और चाय छानने लगा।

मां अपनी कोठरी में जाकर कुछ खटर-पटर कर रही थी। जरा देर में ही एक तश्तरी में चांदी का वर्क लगा हुआ सेब का मुरब्बा लाकर मां ने उसके सामने रख दिया और बड़े दुलार से कहा, "खा लो!"

अपने विचार पीछे ठेलकर, कुछ मुक्त हो, हंसते हुए सुबोध ने कहा, "अरे अम्मा! बड़ी खातिर कर रही हो! क्या बात है?"

मां ने स्नेह-कातर कंठ से कहा, "तुम कभी ठीक वक्त से आते भी हो! रात को दस-ग्यारह बजे आए। ठण्डा-सूखा खा लिया। सुबह देर से उठे, दोपहर को फिर गायब। कब बनाऊं, कब दूं?"

यह चर्चा तो सुबोध की पहले भी थी। तब वृन्दा और मां दोनों उसके इन्तजार में बैठी रहती थीं। वृन्दा हमेशा बाद में खाती थी। सुबोध की दिनचर्या के ही अनुसार घर के काम होते थे। पर तब वृन्दा नौकरी नहीं करती थी, तब सुबोध बेकार न था। अब खाना वृन्दा की सुविधा के अनुसार बनता था। सुबह जल्दी उठना होता था, इसलिए रात को जल्दी खाकर सो जाती थी। अब सुबोध जब साढ़े आठ पर सोकर उठता तो आधा खाना बन चुकता था। अब नौ बजे वृन्दा खा लेती, तो वह चाय पीता। पहले जब तक वह स्वयं अखबार न पढ़ लेता था, वृन्दा को अखबार छूने की हिम्मत न पड़ती थी, क्योंकि वह हमेशा पन्ने गलत तरह से लगा देती थी। अब उसे अखबार लेने वृन्दा के कमरे में जाना पड़ता था और इसीलिए उसने घर का अखबार पढ़ना छोड़ दिया था।

जूठे बर्तन समेटते हुए मां ने कुछ कहना चाहा, पर रुक गई। उसका असमंजस भांपकर सुबोध ने पूछा, "क्या है?"

प्याला धोते हुए मंद स्वर में मां ने कहा, "घर में तरकारी कुछ नहीं है।"

सुबोध ने उठकर कील पर टंगा मैला थैला उतार लिया। मां ने आंचल की गांठ खोलकर मुड़ा-तुड़ा एक रुपये का नोट उसे थमा दिया और कहा, "ज़रा जल्दी आना! अभी सारी चीज़ें बनाने को पड़ी हैं।"

सुबोध कोट पहने बिना ही बाज़ार चल दिया। यह पतलून वह काफी दिनों से पहन रहा था। कमीज के फटे हुए कफ और कालर काफी गन्दे थे, पर उसने परवाह नहीं की। पर दोनों हाथों से थैले का मुंह पकड़कर उसमें गन्दी तराजू से मिट्टी-लगे आलू डलवाते हुए सुबोध को एक झटका-सा लगा। उसके पास ही किसी का पहाड़ी नौकर भाव पूछ रहा था। उसके चीकट बालों से माथे पर तेल बह रहा था, मुंह से बीड़ी का कड़वा धुआं निकल रहा था। वह भी थैला लिए था और तरकारी लेने आया था। सुबोध अचानक ही सोच उठा कि वह कहां से कहां आ पहुंचा है! अपने अफसर की अपमानजनक बात सुनकर तो उसने अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए इस्तीफा दे दिया था, लेकिन अब कहां है वह आत्म-सम्मान? छोटी बहन पर भार बनकर पड़ा हुआ है। उसे देखकर मां मन ही मन घुलती रहती है। जिन्दगी ने उसे भी गुलाब के फूल दिए थे, लेकिन उसने स्वयं ही उन्हें ठुकरा दिया और अब शोभा भी······

हाथ झाड़कर सुबोध ने पैसे दिए और चल पड़ा। इस सबके बावजूद उसके अन्दर एक तुष्टि का हल्का-सा आलोक था कि इस्तीफा देकर उसने ठीक ही किया। उसके जैसा स्वाभिमानी व्यक्ति अपमान का कड़वा घूंट कैसे पी लेता? स्वाभि-मान? सुबोध के ओंठ एक कड़वी मुस्कान से खिंच उठे। वाह रे स्वाभिमानी! उसने अपने-आपसे कहा। उसे वे सब बातें स्पष्ट होकर फिर याद आ गईं, वे बातें, जो रह-रहकर टीस उठती थीं। सुबोध स्मृति का एलबम खोलने लगा। हर चित्र स्पष्ट था।

नौकरी छोड़कर वह कुछ महीने घर नहीं लौटा, वहीं दूसरी नौकरी खोजता रहा और जब लौटा तो उसने घर का चित्र ही बदला हुआ पाया। उसकी अनु-पस्थिति में वृन्दा ने उसकी मेज़ ले ली थी और उसके लौटने पर वृन्दा ने अवज्ञा से कहा था, "दादा, आप क्या करेंगे मेज़ का? मुझे काम पड़ेगा।"

सुबोध कुछ तीखी-सी बात कहते-कहते रुक गया। कई साल में घिसट-घिसट-कर बी० ए०, एल० टी० कर लेने और मास्टरनी बन जाने से ही जैसे वृन्दा का

पूछा, "अम्मां, दादा घर में हैं ?"

सुबोध सुनकर भी न उठा। मां का उत्तर सुन वृन्दा उसके कमरे के दरवाज़े पर खड़ी होकर बोली, "दादा, तांगेवाले को रुपया भुनाकर बारह आने दे दो।"

सुबोध ने चप्पलों में पैर डाले, उसके हाथ से रुपया लिया और बाहर आया।

उसकी दृष्टि सामने खड़ी शोभा से मिल गई। उसके नमस्कार का संक्षिप्त उत्तर दे वह बाहर आ गया। नोट तुड़ाकर तांगे वाले को पैसे दिए और फिर अन्दर नहीं गया। पड़ोस में एक परिचित के घर बैठ गया, और शतरंज की बाज़ी देखने लगा।

वहां बैठे-बैठे जब उसने मन में अन्दाज़ लगा लिया कि अब तक शोभा और निर्मला खाना खाकर चली गई होंगी, तो वह घर आया। सड़क पर सन्नाटा हो गया था। बत्तियों के आस-पास धुंधले प्रकाश का घेरा था, और पानवाला, ग्राहकों की प्रतीक्षा में चुप और स्थिर बैठा था।

वृन्दा ने झुंझलाकर कहा, "कहां चले गए थे, दादा ? शोभा और निर्मला कब से घर जाने को बैठी हैं ! तुम्हें पहुंचाने जाना है।"

"मुझे मालूम नहीं था," सुबोध ने कहा।

"जैसे कभी शोभा को घर पहुंचाया नहीं है !" वृन्दा ने कहा।

"तब," सुबोध ने सोचा, तब शोभा की सगाई कहीं और नहीं हुई थी, तब वह बेकार न था। शोभा उससे शरमाती थी, पर उसके गुलदान में फूल लगा जाती थी। मां नये गहने बनवा रही थीं, और वृन्दा अपने कमरे में बैठी-बैठी कुढ़ती थी, क्योंकि बदसूरत थी और उससे कोई शादी करने को राज़ी नहीं होता था...

"अच्छा तो चलें," सुबोध ने शोभा की ओर नहीं देखा।

पर शोभा बोल पड़ी, "हमें जल्दी नहीं है। आप खाना खा लीजिए।"

मां ने कढ़ाई चूल्हे पर चढ़ा दी। वृन्दा निर्मला को लेकर अपने कमरे में चली गई। सुबोध बैठ गया और शोभा ने उसके आगे तिपाई रख दी। फिर उसने रेशमी साड़ी का आंचल कमर में खोंस लिया और थाली लाकर उसके सामने रख दी। सुबोध नीची नज़र किए खाने लगा। चौके से बरामदे, बरामदे से चौके में बार-बार जाती हुई शोभा की साड़ी का बार्डर उसे दिखाई देता रहा, हरी साड़ी, जोगिया बार्डर, जिसपर मोर और तोते कढ़े हुए थे। कभी-कभी एड़ियां भी झलक उठतीं, उजली, चिकनी एड़ियां। सुबोध को लगता कि वह अतीत में पहुंच गया है। और

शोभा वही है, वही जिससे कभी उसकी प्यार की बातें नहीं हुईं, पर जो अनायास ही उससे शरमाने लगी थी। शायद उसे पता चल गया था कि उसके पिता ने सुबोध से बातचीत शुरू कर दी है···और शायद अब तक शादी भी हो जाती, अगर सुबोध को कोई दूसरी नौकरी मिल जाती, या अगर सुबोध पहली अच्छी नौकरी न छोड़ता···

सुबोध ने खाना बन्द कर दिया। पानी पीकर, हाथ धोने उठा, तो शोभा झट से हाथ धुलाने लगी। उसकी आंखों में विनय-भरी कातरता थी, उसके मुख पर उदासी, पर उसके बालों से सुवास आ रही थी।

जब वह तांगा लेकर आया, तो शोभा मां के पास चुप खड़ी थी और मां उसके सिर पर हाथ फेर रही थी।

रास्ते-भर दोनों चुप रहे। सबसे पहले निर्मला का घर आया, उसके उतर जाने पर शोभा ने आंसू-भरे कंठ से कहा, "आप यहां पीछे आ जाइए न!" वह उतरकर पीछे आ गया, तब बोली, "कुछ बोलेंगे नहीं?"

"क्या कहूं?" सुबोध ने उसकी ओर मुड़कर उसे देखते हुए कहा।

शोभा की आंखें छलक रही थीं। घोंटकर कहा, "मैंने तो पिताजी से बहुत कहा।···फिर आखिर मैं क्या करती?"

"मैं तो कुछ भी नहीं कह रहा हूं। इस बात को स्वीकार कर लो कि मैं ज़िंदगी में फेलियर हूं, कम्प्लीट फेलियर। कुछ नहीं कर सका! जैसे मेरी ज़िन्दगी में अब फुलस्टाप लग गया है। अब ऐसे ही रहूंगा। तुम्हारे फादर ने ठीक ही किया। तुम सुखी होओगी। प्यार से बड़ी एक और आग होती है, भूख की! वह आग धीरे-धीरे सब कुछ लील लेती है···"

"आप इतने बिटर क्यों हो गए हैं?"

"ज़िन्दगी ने ही मुझे बिटर बना दिया है," फिर जैसे जागकर तांगे वाले से कहा, "अरे बड़े मियां! लौटा ले चलो, घर तो पीछे छूट गया।"

शोभा उतरी। कुछ क्षण अनिश्चित-सी खड़ी रही। सुबोध के हाथ बढ़े, पर फिर पीछे लौट आए, "अच्छा, शोभा।"

"नमस्ते," शोभा ने कहा और वह अन्दर चली गई। तांगे में अकेला सुबोध सड़क पर घोड़े की एकरस टापों के शब्द को सुन रहा था। कभी-कभी तांगेवाला खांस उठता और वह खांसी उसका शरीर झिंझोड़ जाती। अंधेरा···खांसी···और

आखिरी सपने की भी मौत !

सुबह उठकर सुबोध ने सबसे पहले बरामदे में बैठे धोबी को देखा। जितनी देर में उसके लिए चाय बनी, उसने अपने सारे गन्दे कपड़े इकट्ठे कर, उनका ढेर लगा दिया। आलमारी में सिर्फ एक साफ कमीज़ बची थी, पीठ पर फटी हुई। उसे ढकने के लिए सुबोध ने कोट पहन लिया। कोट को भी काफी दिनों से धोबी को देने का इरादा था, परन्तु अब जब तक धोबी कपड़े लाए, तब तक यही सही।

चाय पीकर वह बाहर चला आया। कोट की जेबों की तलाशी करने पर उंगलियां एक इकन्नी से जा टकराईं। पानवाले की दुकान पर सिगरेट खरीदा और जलाकर एक गहरा कश खींचा, और दो-एक जगह रुककर वापस चला। रास्ते में उसे धोबी मिला, और उसने सुबोध को दुबारा सलाम किया।

"कपड़े ज़रा जल्दी लाना, समझे ?" कुछ रोब से सुबोध ने कहा।

"अच्छा बाबूजी," धोबी चला गया।

कमरे में घुसते ही मैले कपड़ों का ढेर उसे वैसे ही दिखाई पड़ा, जैसाकि छोड़ गया था। उसने वहीं रुककर पुकारा, "अम्मां ! मेरे कपड़े धुलने नहीं गए।"

"पता नहीं, बेटा। वृन्दा दे रही थी, उससे कहा भी था कि तुम्हारे भी दे दे..."

सुबोध को न जाने कहां का गुस्सा चढ़ आया। चीखकर बोला, "कितने दिनों से गन्दे कपड़े पहन रहा हूं ! पन्द्रह दिन में नालायक धोबी आया, तो उसे भी कपड़े नहीं दिए गए। तुम मां-बेटी चाहती क्या हो ? आज मैं बेकार हूं, तो मुझसे नौकरों-सा बर्ताव किया जाता है ! लानत है ऐसी जिन्दगी पर !"

मां त्रस्त हो उठी। जब सुबोध का कण्ठ-स्वर इतना ऊंचा हो गया कि बाहर तक आवाज़ जाने लगी, तो वह रो दी। उसने कुछ कहना चाहा, मगर सुबोध ने अवसर नहीं दिया। कहता गया, "मुझे मुफ्त का नौकर समझ लिया है ? पहले कभी तुमने मुझे यह सब काम करते देखा था ? फिर उसके कंठ की नकल करता हुआ बोला, "घर में तरकारी नहीं है ! वृन्दा की सहेलियां खाना खाएंगी। उधर हमारी बहन हैं कि हकूमत किया करती हैं ! अब मैं समझ गया हूं कि मेरी इस घर में क्या कद्र है। मैं आज ही चला जाऊंगा। तुम दोनों चैन से रहना।"

सहमा-सहमा वह घर से बाहर आ गया। अपनी छटपटाहट में उसके अन्दर एक तीव्र विध्वंसक प्रवृत्ति जग उठी थी। उसका मन चाह रहा था कि जो कुछ भी सामने पड़े, उसे तहस-नहस कर डाले। वह चलता गया और उसी धुन में एक साइकिल सवार से टकरा गया। वह गिर पड़ा। उसके ऊपर साइकिल आ गई और वह व्यक्ति सबके ऊपर। जब उसकी कोहनियाँ पक्की सड़क से छिली, और एक तीव्र पीड़ा हुई, तो उसका ध्यान बँटा। वह कुछ हक्का-बक्का-सा रह गया। उसने पाया कि उस व्यक्ति ने उससे तकरार नहीं की, अपने कपड़े झाड़े और साइकिल उठाते हुए कहा, "भाई साहब, जरा देखकर चला कीजिए। चोट तो नहीं आई।"

अगर वह लड़ता तो उस मूड में शायद सुबोध मार-पीट करने को उतारू हो जाता। पर उसकी अप्रत्याशित विनम्रता से सुबोध ठिठककर रह गया।

जब सुबोध ने उठकर चलने की कोशिश की, तो पाया कि बायाँ पैर सूजने लगा है। लंगड़ाता हुआ वह पार्क की बेंच पर आकर बैठ गया। उसकी दाहिनी कोहनी से खून टपक रहा था। जरा-सा भी हिलने से पैर में तीव्र पीड़ा होने लगती थी। उसने संभालकर पैर बेंच पर रख लिया और लेट गया।

अपना ध्यान पीड़ा से हटाने के लिए वह फूलों को देखने लगा। उसकी बेंच के पास ही गुलाब की घनी बेल थी, जिसमें हल्के पीले फूल थे। दर्द बढ़ता जा रहा था। उसने हिलना-डुलना भी बन्द कर दिया। कुछ देर स्थिर पड़े रहने से दर्द में विराम हुआ, तो उसके ख्याल फिर सवेरे की घटना पर केन्द्रित हो गए।

उसका पैर हिला और दर्द की एक तेज लहर उठकर पूरे बायें पैर में व्याप्त हो गई। सुबोध ने होंठ भींच लिए।

जाड़ों की धूप थी पर लोहे की बेंच धीरे-धीरे गरम होती जा रही थी और बेंच का एक उठा हुआ कोना उसकी पीठ में गड़ रहा था। पर वह हिला-डुला नहीं। आँखें खोलकर सड़क की ओर देखा, तो स्कूल जाते हुए बच्चे, साइकिलें, खोमचेवाले···उसने आँखें बन्द कर लीं। जब पैर का दर्द कम होता, तो कोहनी टपटपाने लगती। पर इस आत्मपीड़न से जैसे उसे कुछ सन्तोष-सा हो रहा था।

वह कब सो गया, उसे पता नहीं। जब आँखें खुलीं, तो सूरज सर पर था और बेंच तप रही थी। वह उठकर, बायाँ पैर घसीटता और दर्द सहता हुआ झाड़ के पास घास पर लेट गया। उसपर एक बेहोशी-सी छाई जा रही थी। घास का स्प

शीतल था, सुखदायी हवा में गुलाब के फूलों की सुवास थी, पर उसे चैन न था।

उसे अचानक मां का ध्यान आ गया। शायद वह चिन्तित दरवाज़े पर खड़ी हो, शायद वह उसके इन्तज़ार में भूखी हो। उसने एक लम्बी सांस ली और बांहें सिर के नीचे रख लीं।

दिन कितना लम्बा हो गया था कि बीत ही नहीं रहा था। जैसे एक युग के बाद आकाश में एक तारा चमका और फिर अनेक तारे चमक उठे। सुबोध घास से उठकर फिर बेंच पर लेट गया। उसके सिर में भारीपन था, मुंह में कड़वाहट, पैर में जैसे एक भारी पत्थर बंधा था। सारा दिन हो गया था, पर कोई खोजता हुआ नहीं आया। वृन्दा को तो पता था कि वह अक्सर पार्क में बैठा करता है। मगर उसे क्या फिक्र ?

पार्क से लोग उठ-उठकर जाने लगे थे। बच्चे, उनकी आयाएं, स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए घूमने आनेवाले प्रौढ़, दो-दो चोटियां किए, हंस-हंसकर एक-दूसरे पर गिरती मुहल्ले की लड़कियां···पार्क शान्त हो गया। हरी घास पर बच गए मूंग-फली के छिलके, पुड़ियों के कागज़ के टुकड़े, तोड़े गए फूलों की मसली हुई पंखुड़ियां···

तीन फाटक बन्द कर लेने के बाद चौकीदार सुबोध की बेंच के पास आकर खड़ा हो गया।

"अब घर जाओ, बाबू, पार्क बन्द करने का टेम हो गया।"

बिना कुछ कहे सुबोध उठ गया। दो-एक कदम लड़खड़ाया, फिर चलने लगा। हर बार जब बायां पैर रखता, तो दर्द होता। धीरे-धीरे लंगड़ा-लंगड़ाकर वह पार्क से बाहर निकल आया।

दरवाज़ा खुला था। बरामदे में मद्धिम रोशनी थी। चौके में अंधेरा। वह अपने कमरे में आया। कोने में मैले कपड़ों का ढेर था। ढीली चारपाई, गन्दा बिस्तर, तिपाई पर खाना ढंका हुआ रखा था।

सुबोध चारपाई पर बैठ गया, और तिपाई खींचकर लालचियों की तरह जल्दी-जल्दी बड़े-बड़े कौर खाने लगा।